933/9

॥ श्रीः ॥

वैशेषिकदर्शनसूत्राणि ।

श्रीमत्कणादमुनिप्रणीतानि ।

श्रीमत्प्यारेलालात्मज–बाँदामण्डलान्तर्गततेर-
हीत्याख्यग्रामनिवासिपण्डितप्रभुदयालुनि-
र्मितहिन्दीभाषानुवादसमलंकृतानि ।

श्रीमत्प्रशस्तपादाचार्यविरचित–पदार्थधर्मसंग्र-
हभाष्य–भाषार्थविभूषितानि च ।

अर्थात्

वैशेषिकन्यायदर्शनम् ।

भाषानुवादविभूषितम् ।

सोऽयं ग्रन्थः

क्षेमराज–श्रीकृष्णदासश्रेष्ठिना

मुम्बय्यां

(खेतवाडी ७ वीं गली खम्बाटा लैन)

स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) मुद्रणयन्त्रालये

मुद्रयित्वा प्रकाशितः ।

आश्विने संवत् १९६९, शके १८३४.

अस्य सर्वेऽधिकाराः प्रकाशकाधीनाः सन्ति.

933/2

॥ श्रीः ॥

धन्यवादः ।

तस्मै परब्रह्मणे परमात्मने शतशो धन्यवादाः सन्तु । यदीययाऽनुपमया घटनया सांप्रतमस्मत्परममित्रवर्याजयगढ़निवासिमुंशीप्रभुदयालुसमाना अपि केवलं लोकोपकारिणः पुरुषाः सन्ति । यैः प्रायः शास्त्राणामवनतिं निरीक्ष्य षण्णामपि शास्त्राणां स्पष्टसुगमभाषानुवादकरणे संकल्पोऽकारि । तत्र तदनुवादितौ "साङ्ख्यदर्शन" "योगदर्शन" नामानौ शास्त्रग्रन्थौ पाठकानां दृष्टिगोचरतामगमताम् । अयं च "वैशेषिकदर्शन" नामा तृतीयो ग्रन्थोऽधुना तथा भवितुं प्रवर्तते । एतदतिरिक्ता "वेदान्तदर्शन" प्रभृतयो ग्रन्था अपि क्रमशः प्रसिद्धिमेष्यन्ति । एतेषां भाषाश्रेणी त्वतीव मनोहरास्ति । कोऽप्यधीतोऽनधीतो वा मनुष्यः सकृच्छ्रवणमननाभ्यामेव ग्रन्थकर्तुः पूर्णमाशयं हृदये प्रकाशन्तं पश्यति । उक्तश्रीप्रभुदयालुमहाशयानामेतादृशजगदुपकारकग्रन्थानां सर्वेऽधिकारा अस्य मदीयस्य "श्रीवेङ्कटेश्वर" मुद्रणालयस्याधीनाःसन्ति आशास्महे च—विद्वज्जना एतानतिदुर्लभशास्त्रग्रन्थान्दृष्ट्वा प्रोक्तश्रीप्रभुदयालुमहाशयानामनन्यसाधारणान्प्रयत्नान्सफलीकुर्वन्त्विति शम् ॥

विद्वज्जनप्रेमाभिलाषी—

क्षेमराज—श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" मुद्रणालयाध्यक्षो

मुंबई—स्थः

॥ श्रीः ॥

अथ वैशेषिकदर्शनसूत्राणि ।

सानुवादानि ।

अथातोधर्मंव्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

अर्थ—अथ (अब) इससे धर्मको वर्णन करेंगे ॥ १ ॥

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयस्सिद्धिः स धर्मः ॥ २ ॥

अर्थ—जिससे स्वर्ग व मोक्षकी सिद्धि होती है वह धर्म है ॥ २ ॥

तद्वचनादाम्नायस्यप्रामाण्यम् ॥ ३ ॥

अर्थ—उसके वचनसे वेदका प्रामाण्य है ॥ ३ ॥

धर्मविशेषप्रसूताद्द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायानां पदार्थानांसाधर्म्यवैधर्म्याभ्यांतत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसम् ॥४॥

अर्थ—साधर्म्य व वैधर्म्यद्वारा धर्मविशेषसे उत्पन्न द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष व समवाय पदार्थोंके तत्त्वज्ञानसे मोक्ष होता है ॥४॥

पृथिव्यापस्तेजोवायुराकाशंकालोदिगात्मामन इतिद्रव्याणि ॥ ५ ॥

अर्थ—पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा व मन ए द्रव्य हैं ॥ ५ ॥

रूपरसगन्धस्पर्शाःसंख्याःपरिमाणानिपृथक्त्व-संयोगविभागौपरत्वापरत्वेबुद्धयःसुखदुःखेइ-च्छाद्वेषौप्रयत्नाश्चगुणाः ॥ ६ ॥

अर्थ—रूप, रस, गंध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, बुद्धियां, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष व प्रयत्न आदि गुण हैं ॥ ६ ॥

उत्क्षेपणमवक्षेपणमाकुञ्चनंप्रसारणंगमनमितिकर्माणि॥

अर्थ–उत्क्षेपण (ऊपरको चेष्टाकरना), अवक्षेपण (नीचेको चेष्टाकरना), आकुंचन (सिकोडना), प्रसारण (प्रसारना), गमन (चलना) अर्थात् जाना आना लाना आदि कर्म हैं ॥ ७ ॥

सदनित्यंद्रव्यवत्कार्यकारणंसामान्यविशेषवदितिद्रव्यगुणकर्मणामविशेषः ॥ ८ ॥

अर्थ–विद्यमान अनित्य द्रव्यवान् (द्रव्यसम्बन्धी) कार्य, कारण, सामान्य व विशेषवान् (सामान्य व विशेष सम्बन्धी) होना यह द्रव्य गुण व कर्मोंका अविशेष (सामान्य लक्षण) है ॥ ८ ॥

द्रव्यगुणयोःसजातीयारम्भकत्वंसाधर्म्यम् ॥ ९ ॥

अर्थ–सजातीय पदार्थनका आरंभक होना द्रव्य व गुणका साधर्म्य है ॥ ९ ॥

द्रव्याणिद्रव्यान्तरमारभन्तेगुणाश्चगुणान्तरम् १०॥

अर्थ–द्रव्य अन्य द्रव्यके आरंभक (उत्पादक) होतेहैं, गुण अन्यगुणके आरंभक होतेहैं ॥ १० ॥

कर्मकर्मसाध्यंनविद्यते ॥ ११ ॥

अर्थ–कर्म कर्मसे साध्य नहीं होता ॥ ११ ॥

नद्रव्यंकार्यंकारणंचवधति ॥ १२ ॥

अर्थ–द्रव्यको न कार्य नाश करता है न कारण नाश करता है॥ १२॥

उभयथागुणाः ॥ १३ ॥

अर्थ–दोनों प्रकारसे गुण नष्ट होते हैं ॥ १३ ॥

कार्यविरोधिकर्म ॥ १४ ॥

अर्थ–कार्यही है नाशक जिसका ऐसा कर्म है अर्थात् कर्म अपने कार्यहीसे नाशको प्राप्त होता है ॥ १४ ॥

क्रियागुणवत्समवायिकारणमितिद्रव्यलक्षणम् ॥ १५ ॥

अर्थ—क्रियागुणवाला हो व समवायि कारण हो यह द्रव्यका लक्षण है ॥ १५ ॥

द्रव्याश्रय्यगुणवान्संयोगविभागेष्वकारणमनपेक्षइतिगुणलक्षणम् ॥ १६ ॥

अर्थ—द्रव्यमें रहनेवाला हो गुणरहित हो संयोग व विभागोंमें कारण न हो अनपेक्ष अर्थात् संयोग व विभागकी अपेक्षा न करे अथवा एक दूसरेकी (दूसरे गुणकी) अपेक्षा न करे यह गुणका लक्षण है ॥ १६ ॥

एकद्रव्यमगुणंसंयोगविभागेष्वनपेक्षकारणमितिकर्मलक्षणम् ॥ १७ ॥

अर्थ—एकही द्रव्य जिसका आश्रय (आधार) हो अर्थात् एकही द्रव्यमें प्रवृत्त हो गुणरहित हो संयोगविभागोंमें अपेक्षारहित कारण हो अर्थात् साधारणही संयोगविभागोंका विशेष कारण हो यह कर्मका लक्षण है ॥ १७ ॥

द्रव्यगुणकर्मणांद्रव्यंकारणंसामान्यम् ॥ १८ ॥

अर्थ—द्रव्य, द्रव्यगुणकर्मोंका सामान्य कारण है ॥ १८ ॥

तथागुणाः ॥ १९ ॥

अर्थ—तेही प्रकारसे गुण हैं ॥ १९ ॥

संयोगविभागवेगानांकर्मसमानम् ॥ २० ॥

अर्थ—संयोग, विभाग व वेगोंका कर्म समान कारण है ॥ २० ॥

नद्रव्याणांकर्म ॥ २१ ॥

अर्थ—कर्म द्रव्योंका कारण नहीं होता ॥ २१ ॥

व्यतिरेकात् ॥ २२ ॥

अर्थ—अभावसे ॥ २२ ॥

द्रव्याणांद्रव्यंकार्यंसामान्यम् ॥ २३ ॥

अर्थ-द्रव्य (कार्यद्रव्य) द्रव्योंका (कारणद्रव्योंका) सामान्य कार्य है ॥ २३ ॥

गुणवैधर्म्यान्नकर्मणांकर्म ॥ २४ ॥

अर्थ-गुणके विरुद्ध धर्म होनेसे कर्मोंका कार्य कर्म नहीं होता २४॥

द्वित्वप्रभृतयःसंख्याःपृथक्त्वसंयोगविभागाश्च ॥२५॥

अर्थ-दो होना आदि संख्या, पृथक्त्व, संयोग व विभागभी अनेक द्रव्योंके कार्य हैं ॥ २५ ॥

असमवायात्सामान्यकार्यंकर्मनविद्यते ॥ २६ ॥

अर्थ-अनेकमें सम्बन्ध होनेसे कर्म सामान्यकार्य नहीं होता२६॥

संयोगानांद्रव्यम् ॥ २७ ॥

अर्थ-संयोगोंका कार्य द्रव्य है ॥ २७ ॥

रूपाणांरूपम् ॥ २८ ॥

अर्थ-रूपोंका (रूपोंका कार्य) रूपहै ॥ २८ ॥

गुरुत्वप्रयत्नसंयोगानामुत्क्षेपणम् ॥ २९ ॥

अर्थ-गुरुत्व प्रयत्न व संयोगोंका कार्य उत्क्षेपणहै ॥ २९ ॥

संयोगविभागाश्चकर्मणाम् ॥ ३० ॥

अर्थ-संयोग, विभाग आदि कर्मोंके कार्य हैं ॥ ३० ॥

कारणसामान्येद्रव्यकर्मणांकर्माकारणमुक्तम् ॥ ३१ ॥

अर्थ-कारणसामान्यमें (सामान्यकारणवर्णनके प्रकरणमें) द्रव्य व कर्मोंका कारण कर्म नहीं होता यह कहा गयाहै ॥ ३१ ॥

इति प्रथमाध्यायस्य प्रथममाह्निकम् ।

कारणाभावात्कार्याभावः ॥ १ ॥

अर्थ-कारणके अभावसे कार्यका अभाव होताहै ॥ १ ॥

नतुकार्याभावात्कारणाभावः ॥ २ ॥

अर्थ-कार्यके अभावसे कारणका अभाव नहीं होता ॥ २ ॥

सामान्यंविशेषइतिबुद्ध्यपेक्षम् ॥ ३ ॥

अर्थ-सामान्य व विशेष बुद्धिकी अपेक्षासे सिद्ध होते हैं ॥ ३ ॥

भावोऽनुवृत्तेरेवहेतुत्वात्सामान्यमेव ॥ ४ ॥

अर्थ-अनुवृत्तिही मात्रके हेतु होनेसे भाव सामान्यही है ॥ ४ ॥

द्रव्यत्वंगुणत्वंकर्मत्वंचसामान्यविशेषाश्च ॥ ५ ॥

अर्थ-द्रव्यत्व (द्रव्यपन) गुणत्व व कर्मत्व सामान्य व विशेष होते हैं ॥ ५ ॥

अन्यत्रान्तेभ्योविशेषेभ्यः ॥ ६ ॥

अर्थ-अन्तमें रहनेवाले विशेषोंसे भिन्नमें (सामान्य व विशेषका कथन है) ॥ ६ ॥

सदितियतोद्रव्यगुणकर्मसुसासत्ता ॥ ७ ॥

अर्थ-है यह बोध द्रव्यगुणकर्मोंमें जिससे होता है वह सत्ता है.

द्रव्यगुणकर्मभ्योऽर्थान्तरंसत्ता ॥ ८ ॥

अर्थ-द्रव्यगुणकर्मोंसे सत्ता भिन्न पदार्थ है ॥ ८ ॥

गुणकर्मसुभावान्नकर्मनगुणः ॥ ९ ॥

अर्थ-गुण व कर्मोंमें होनेसे न कर्म है न गुण है ॥ ९ ॥

सामान्यविशेषाभावेनच ॥ १० ॥

अर्थ-सामान्य व विशेषके अभावसेभी ॥ १० ॥

अनेकद्रव्यवत्त्वेनद्रव्यत्वमुक्तम् ॥ ११ ॥

अर्थ-अनेक द्रव्यवाला होनेसे द्रव्यत्व (द्रव्यका भाव) कहागया अर्थात् द्रव्यका भाव भिन्न कहागया समझना चाहिये ॥ ११ ॥

सामान्यविशेषाभावेनच ॥ १२ ॥

अर्थ–सामान्य व विशेषके अभावसे (न होनेसे) भी ॥ १२ ॥

तथागुणेषुभावाद्गुणत्वमुक्तम् ॥ १३ ॥

अर्थ–तेहीप्रकारसे गुणोंमें होनेसे गुणत्व (गुणपन) कहागया अर्थात् द्रव्यत्वके समान गुणत्वको कहागया समझना चाहिये ॥ १३ ॥

सामान्यविशेषाभावेनच ॥ १४ ॥

अर्थ–सामान्य व विशेषके अभावसे भी ॥ १४ ॥

कर्मसुभावात्कर्मत्वमुक्तम् ॥ १५ ॥

अर्थ–कर्मोंमें होनेसे कर्मत्व (कर्मका भाव) कहागया अर्थात् भावमात्रके समान कर्मत्व द्रव्यगुणकर्मोंसे भिन्न कहागया समझना चाहिये ॥ १५ ॥

सामान्यविशेषाभावेनच ॥ १६ ॥

अर्थ–सामान्य व विशेष न होनेसे भी ॥ १६ ॥

सदितिलिङ्गाविशेषाद्विशेषलिङ्गाभावाच्चैकोभावः १७॥

अर्थ–है यह ज्ञान जो भावका लिङ्ग (चिह्न वा लक्षण) है इसके विशेष न होनेसे व विशेष (भेद) के लिङ्ग (अनुमान) के अभावसे भाव एक है ॥ १७ ॥

इति प्रथमाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम् ।

रूपरसगन्धस्पर्शवतीपृथिवी ॥ १ ॥

अर्थ–रूप रस गंध स्पर्शवाली पृथिवी है ॥ १ ॥

रूपरसस्पर्शवत्यआपोद्रवाःस्निग्धाः ॥ २ ॥

अर्थ–रूपरसस्पर्शसहित बहनेवाला स्निग्ध (चिकना)जल है ॥ २ ॥

तेजोरूपस्पर्शवत् ॥ ३ ॥

अर्थ–तेज रूप व स्पर्शवाला है ॥ ३ ॥

स्पर्शवान्वायुः ॥ ४ ॥

अर्थ–स्पर्शगुणवाला वायु है ॥ ४ ॥

तआकाशेनविद्यन्ते ॥ ५ ॥

अर्थ—वे आकाशमें नहीं होते ॥ ५ ॥

सर्पिर्जतुमधूच्छिष्टानामग्निसंयोगाद्द्रवत्वमद्भिः सामान्यम् ॥ ६ ॥

अर्थ—घी, लाख, मोमोंका अग्निके संयोगसे बहना जलके साथ सामान्य है ॥ ६ ॥

त्रपुसीसलोहरजतसुवर्णानामग्निसंयोगाद्द्रवत्व-मद्भिः सामान्यम् ॥ ७ ॥

अर्थ—टीन सीस लोह चांदी सुवर्णोंका अग्निके संयोगसे बहना जलके समान है ॥ ७ ॥

विषाणीककुद्मान्प्रान्तवालधिःसास्नावान्इति गोत्वेदृष्टलिङ्गम् ॥ ८ ॥

अर्थ—जिसके सींगहों जिसके कौहानहो अंतमें जिसके बालहों ऐसी पूंछवाला गलेमें जिसके काँवरहो ऐसा होना गौ होनेमें दृष्टलिङ्ग (प्रत्यक्ष चिह्न) है ॥ ८ ॥

स्पर्शश्चवायोः ॥ ९ ॥

अर्थ—स्पर्शभी वायुका ॥ ९ ॥

नचदृष्टानांस्पर्शइत्यदृष्टलिङ्गोवायुः ॥ १० ॥

अर्थ—और दृष्टपदार्थोंका लिङ्ग स्पर्श नहीं है इससे वायु अदृष्टलिङ्गवाला है अर्थात् ऐसा है जिसका लिङ्ग स्पर्श अदृष्ट है ॥ १० ॥

अद्रव्यवत्त्वेनद्रव्यम् ॥ ११ ॥

अर्थ—द्रव्यवान् न होनेसे अर्थात् किसी द्रव्यमें आश्रित न होनेसे द्रव्यहै॥

क्रियावत्त्वाद्गुणवत्त्वाच्च ॥ १२ ॥

अर्थ—क्रियावान् वं गुणवान् होनेसे ॥ १२ ॥

अद्रव्यवत्त्वेननित्यत्वमुक्तम् ॥ १३ ॥

अर्थ—किसी द्रव्यमें आश्रित न होनेसे नित्यहोना (वायुका नित्यहोना) कहागया है ॥ १३ ॥

वायोर्वायुसंमूर्च्छनंनानात्वलिङ्गम् ॥ १४ ॥

अर्थ–वायुका वायुके साथ संमूर्च्छन (विरुद्ध दिशाओंसे वेगसे आयेहुओंका एक दूसरेके साथ धक्का लगना वा भिडजाना) होना वायुके अनेक होनेका चिह्न वा लक्षण है ॥ १४ ॥

वायुसन्निकर्षेप्रत्यक्षाभावाद्दृष्टंलिङ्गंनविद्यते ॥ १५ ॥

अर्थ–वायुके सन्निकर्षमें प्रत्यक्षके न होनेसे दृष्टलिङ्ग नहीं है अर्थात् वायुका लिङ्ग दृष्ट नहीं है ॥ १५ ॥

सामान्यतोदृष्टाच्चाविशेषः ॥ १६ ॥

अर्थ–और सामान्यतोदृष्टसे(सामान्यतोदृष्टअनुमानसे ज्ञातहोनेसे) अविशेष है (विशेषरहित है वा विशेषसे विशेषित नहीं है ॥ १६ ॥

तस्मादागमिकम् ॥ १७ ॥

अर्थ–तिससे आगमिक (वेदमें प्रसिद्ध है) ॥ १७ ॥

संज्ञाकर्मत्वस्मद्विशिष्टानांलिङ्गम् ॥ १८ ॥

अर्थ–संज्ञा व कर्म हमसे विशिष्टों (विशेषगुण व सामर्थ्यवालों) का लिङ्ग है ॥ १८ ॥

प्रत्यक्षप्रवृत्तत्वात्संज्ञाकर्मणः ॥ १९ ॥

अर्थ–संज्ञा व कर्मका प्रत्यक्ष प्रवृत्त किया गया होनेसे अर्थात् किसी कर्त्तासे प्रत्यक्ष प्रवृत्त किये जानेसे ॥ १९ ॥

निष्क्रमणंप्रवेशनमित्याकाशस्यलिङ्गम् ॥ २० ॥

अर्थ–निकलना व प्रवेशकरना आदि आकाशका लिङ्ग (चिह्न) है २०

तदलिङ्गमेकद्रव्यत्वात्कर्मणः ॥ २१ ॥

अर्थ–कर्मके एक द्रव्यमें आश्रित होनेसे वह (निकलना व पैठना आदि कर्म) लिङ्ग नहीं है ॥ २१ ॥

कारणान्तरानुक्लृप्तिवैधर्म्याच्च ॥ २२ ॥

अर्थ–अन्य कारण असमवायिकारणके लक्षण वैधर्म्यसे (विरुद्ध धर्म होनेसे) भी ॥ २२ ॥

संयोगादभावःकर्मणः ॥ २३ ॥

अर्थ–संयोगसे कर्मका अभाव होताहै ॥ २३ ॥

कारणगुणपूर्वकःकार्यगुणोदृष्टः ॥ २४ ॥

अर्थ–कारणगुणपूर्वक कार्यगुण देखा गया है अर्थात् कार्यगुणका होना प्रत्यक्ष वा विदित होताहै ॥ २४ ॥

कार्यान्तराप्रादुर्भावाच्चशब्दःस्पर्शवतामगुणः ॥ २५ ॥

अर्थ–कार्यान्तर (अन्यकार्य अर्थात् एकसे अधिक कार्य) प्रगट न होनेसे शब्द स्पर्शवाले पदार्थोंका गुण नहीं है ॥ २५ ॥

परत्रसमवायात्प्रत्यक्षत्वाच्चनात्मगुणोनमनोगुणः २६॥

अर्थ–परमें समवाय होनेसे और प्रत्यक्ष होनेसे न आत्माका गुण है न मनका गुण है ॥ २६ ॥

परिशेषाल्लिङ्गमाकाशस्य ॥ २७ ॥

अर्थ–परिशेषसे (बाकी रहनेसे) आकाशका लिङ्ग है ॥ २७ ॥

द्रव्यत्वनित्यत्वेवायुनाव्याख्याते ॥ २८ ॥

अर्थ–द्रव्यत्व (द्रव्यहोना) नित्यत्व (नित्यहोना) वायुके समान व्याख्यात है ॥ २८ ॥

तत्त्वंभावेन ॥ २९ ॥

अर्थ–उसका एक होना भावके समान व्याख्यात है ॥ २९ ॥

शब्दलिङ्गाविशेषाद्विशेषलिङ्गाभावाच्च ॥ ३० ॥

अर्थ–शब्दलिंगके विशेष न होनेसे व विशेषलिंगके अभावसे ३०॥

तदनुविधानादनेकपृथक्त्वञ्चेति ॥ ३१ ॥

अर्थ–उसके (उक्त एकत्वके) अनुविधान (सहचार वा व्याप्ति) से एकत्व व पृथक्त्व (भिन्नहोना) है ॥ ३१ ॥

इति द्वितीयाध्यायस्य प्रथममाह्निकम् ।

पुष्पवस्त्रयोःसतिसन्निकर्षेगुणान्तराप्रादुर्भावोवस्त्रेगन्धाभावलिङ्गम् ॥ १ ॥

अर्थ–पुष्प व वस्त्रके सन्निकर्षमें (संयोगविशेष होनेमें) अन्य गुणसे अथात् कारणगुणसे प्रादुर्भाव (उत्पत्ति) न होना वस्त्रमें गंधके अभाव होनेका लिंग है ॥ १ ॥

व्यवस्थितःपृथिव्यांगन्धः ॥ २ ॥

अर्थ–पृथिवीमें गंध व्यवस्थित (विशेषरूपसे अवस्थित वा स्थित) है अर्थात् पृथिवीका विशेष गुण गंध है ॥ २ ॥

एतेनोष्णताव्याख्याता ॥ ३ ॥

अर्थ–इसी प्रकारसे उष्णता व्याख्यान कीगई है यह समझना चाहिये ॥ ३ ॥

तेजसउष्णता ॥ ४ ॥

अर्थ–तेजका लिंग वा लक्षण उष्णता है ॥ ४ ॥

अप्सुशीतता ॥ ५ ॥

अर्थ–जलोंमें शीतता है अर्थात् विशेष गुण शीतता है ॥ ५ ॥

अपरस्मिन्नपरंयुगपच्चिरंक्षिप्रमितिकाललिङ्गानि ॥ ६॥

अर्थ–अपरमें अपर होना, अनेकका एक साथ होना, बहुत काल वा देर होना जल्द होना ऐसे ज्ञान होना कालके लिंग हैं ॥ ६ ॥

द्रव्यत्वनित्यत्वेवायुनाव्याख्याते ॥ ७ ॥

अर्थ–द्रव्यत्व व नित्यत्व वायुके समान व्याख्यात है यह समझना चाहिये ॥ ७ ॥

तत्त्वंभावेन ॥ ८ ॥

अर्थ–एक होना भावके समान व्याख्यात समझना चाहिये ॥ ८ ॥

नित्येष्वभावादनित्येषुभावात्कारणेकालाख्येति ॥९॥

अर्थ-नित्योंमें अभावसे (न होनेसे) व अनित्योंमें भावसे (होनेसे) कारणमें काल यह नाम कहा जाता है वा कहनेके योग्य है९

इतइदमितियतस्तद्दिश्यंलिङ्गम् ॥ १० ॥

अर्थ-जिससे इससे यह अर्थात् इससे यह निकट वा दूर है ऐसा ज्ञान होता है वह दिशाका लिंग है ॥ १० ॥

द्रव्यत्वनित्यत्वेवायुनाव्याख्याते ॥ ११ ॥

अर्थ-द्रव्यत्व नित्यत्व वायुके समान व्याख्यात है ॥ ११ ॥

तत्त्वंभावेन ॥ १२ ॥

अर्थ-एक होना भावके समान है ॥ १२ ॥

कार्यविशेषेणनानात्वम् ॥ १३ ॥

अर्थ-कार्यविशेषसे अनेकत्व होता है ॥ १३ ॥

आदित्यसंयोगाद्भूतपूर्वाद्भविष्यतोभूताच्चप्राची ॥१४॥

अर्थ-पूर्वमें हुए, होनेवाले व वर्तमान हुए सूर्यके संयोगसे पूर्व दिशा मानी जाती है ॥ १४ ॥

तथादक्षिणाप्रतीचीउदीचीच ॥ १५ ॥

अर्थ-तैसे ही दक्षिण पश्चिम उत्तरभी ॥ १५ ॥

एतेनदिगन्तरालानिव्याख्यातानि ॥ १६ ॥

अर्थ-इसी प्रकारसे मध्यकी दिशा व्याख्यात समझना चाहिये १६॥

सामान्यप्रत्यक्षाद्विशेषाप्रत्यक्षाद्विशेषस्मृतेश्चसंशयः १७

अर्थ-सामान्यके प्रत्यक्ष होनेसे विशेषके प्रत्यक्ष न होनेसे व विशेषकी स्मृतिसे संशय होता है ॥ १७ ॥

दृष्टञ्चदृष्टवत् ॥ १८ ॥

अर्थ-दृष्टके समान दृष्टभी ॥ १८ ॥

यथादृष्टमयथादृष्टत्वाच्च ॥ १९ ॥

अर्थ-जैसा दृष्ट है वैसा दृष्ट न होनेसे भी ॥ १९ ॥

विद्याऽविद्यातश्चसंशयः ॥ २० ॥

अर्थ-विद्या व अविद्यासे भी संशय होताहै ॥ २० ॥

श्रोत्रग्रहणेयोऽर्थः स शब्दः ॥ २१ ॥

अर्थ-श्रोत्र (कर्ण) से जो ग्रहण किया जावे वह शब्द है.॥२१॥

तुल्यजातीयेष्वर्थान्तरभूतेषुविशेषस्यउभयथा दृष्टत्वात् ॥ २२ ॥

अर्थ-तुल्यजातीयोंमें व अर्थान्तरभूतोंमें (विजातीयोंमें) विशेषके दोनों प्रकारसे दृष्ट (प्रत्यक्ष) होनेसे ॥ २२ ॥

एकद्रव्यत्वान्नद्रव्यम् ॥ २३ ॥

अर्थ-एक द्रव्य,सम्बन्धी होनेसे अर्थात् एक द्रव्यमें आश्रित होनेसे द्रव्य नहीं है ॥ २३ ॥

नापिकर्मचाक्षुषत्वात् ॥ २४ ॥

अर्थ-चक्षुका विषय वा चक्षुगोचर न होनेसे कर्मभी नहीं है ॥२४॥

गुणस्यसतोऽपवर्गःकर्मभिःसाधर्म्यम् ॥ २५ ॥

अर्थ-विद्यमान गुण रूपका अपवर्ग (जल्द नाश होना) कर्मके साथ साधर्म्य है ॥ २५ ॥

सतोलिङ्गाभावात् ॥ २६ ॥

अर्थ-सत्के (विद्यमानके) लिंग (चिह्न वा लक्षण) के न होनेसे सत् नहीं है ॥ २६ ॥

नित्यवैधर्म्यात् ॥ २७ ॥

अर्थ-नित्यके विरुद्ध होनेसे ॥ २७ ॥

अनित्यश्चायंकारणतः ॥ २८ ॥

अर्थ-कारणसे (कारणसे उत्पन्न होनेसे) यह अनित्य है॥ २८॥

नचासिद्धंविकारात् ॥ २९ ॥

अर्थ-और विकार होनेसे असिद्ध नहीं है ॥ २९ ॥

अभिव्यक्तौदोषात् ॥ ३० ॥

अर्थ–प्रकट होनेमें दोषहोनेसे ॥ ३० ॥

संयोगाद्विभागाच्चशब्दाच्चशब्दनिष्पत्तिः॥ ३१ ॥

अर्थ–संयोगसे व विभागसे व शब्दसे शब्दकी सिद्धि वा उत्पत्ति होती है ॥ ३१ ॥

लिङ्गाच्चानित्यश्शब्दः ॥ ३२ ॥

अर्थ–और लिंग होनेसे शब्द अनित्य है ॥ ३२ ॥

द्वयोस्तुप्रवृत्तेरभावात् ॥ ३३ ॥

अर्थ–परन्तु दोकी प्रवृत्तिके अभावसे ॥ ३३ ॥

प्रथमाशब्दात् ॥ ३४ ॥

अर्थ–प्रथमाशब्दसे ॥ ३४ ॥

सम्प्रतिभावाच्च ॥ ३५ ॥

अर्थ–पहिचान होनेसेभी ॥ ३५ ॥

संदिग्धासतिबहुत्वे ॥ ३६ ॥

अर्थ–बहुत होनेपरभी संदिग्ध है ॥ ३६ ॥

संख्याभावःसामान्यतः ॥ ३७ ॥

अर्थ–सामान्यसे संख्याका होना है ॥ ३७ ॥

इति द्वितीयाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम् ॥ २ ॥

प्रसिद्धाइन्द्रियार्थाः ॥ १ ॥

अर्थ–इन्द्रियोंके अर्थ प्रसिद्ध हैं ॥ १ ॥

इन्द्रियार्थप्रसिद्धिरिन्द्रियार्थेभ्योऽर्थान्तरस्यहेतुः॥ २ ॥

अर्थ–इन्द्रियोंके अर्थोंकी प्रसिद्धि (सामान्य बोध) इंद्रियके अर्थोंसे भिन्न अर्थका हेतु (लिङ्ग) है ॥ २ ॥

सोऽनपदेशः ॥ ३ ॥

अर्थ–वह अनपदेश (हेत्वाभास) है ॥ ३ ॥

कारणाऽज्ञानात् ॥ ४ ॥

अर्थ–कारणोंके ज्ञानरहित होनेसे अथवा कारणोंमें ज्ञान न होनेसे ॥ ४ ॥

कार्येषुज्ञानात् ॥ ५ ॥

अर्थ–कार्योंमें ज्ञानसे ॥ ५ ॥

अज्ञानाच्च ॥ ६ ॥

अर्थ–अज्ञानसे भी ॥ ६ ॥

अन्यदेवहेतुरित्यनपदेशः ॥ ७ ॥

अर्थ–हेतु अन्यही होताहै इससे अनपदेश (हेत्वाभास) है ॥ ७ ॥

अर्थान्तरंह्यर्थान्तरस्यानपदेशः ॥ ८ ॥

अर्थ–अर्थांतर (सम्बन्धरहित भिन्न पदार्थ) अर्थांतरका (भिन्नपदार्थका) अनपदेश (हेत्वाभास) होता है ॥ ८ ॥

संयोगिसमवाय्येकार्थसमवायिविरोधिच ॥ ९ ॥

अर्थ–संयोगि,समवायि,एकार्थ,समवायि व विरोधि लिंग है॥ ९ ॥

कार्यंकार्यान्तरस्य ॥ १० ॥

अर्थ–कार्य कार्यान्तरका (अन्यकार्यका) अर्थात् कार्यान्तरका लिङ्ग होता है ॥ १० ॥

विरोध्यभूतंभूतस्य ॥ ११ ॥

अर्थ–भूतका (हुयेका) अभूत (न हुआ) विरोधी है ॥ ११ ॥

भूतमभूतस्य ॥ १२ ॥

अर्थ–भूत अभूतका अर्थात् भूत अभूतका लिंग है ॥ १२ ॥

भूतोभूतस्य ॥ १३ ॥

अर्थ–भूत भूतका ॥ १३ ॥

प्रसिद्धिपूर्वकत्वादपदेशस्य ॥ १४ ॥

अर्थ–अपदेश (हेतु) के प्रसिद्धि (व्याप्तिज्ञान) पूर्वक होनेसे॥ १४॥

अप्रसिद्धोऽनपदेशोऽसनसंदिग्धश्चानपदेशः ॥ १५॥

अर्थ–अप्रसिद्ध अनपदेश है और असन व संदिग्धभी अनपदेश है ॥ १५ ॥

यस्माद्विषाणीतस्मादश्वः ॥ १६ ॥

अर्थ–जिससे सींगवाला है तिस्से घोडा है अर्थात् इस हेतुसे कि इसके सींग हैं यह घोडा है ॥ १६ ॥

यस्माद्विषाणीतस्माद्गौरितिचानैकान्तिकस्योदाहरणम्

अर्थ–जिससे सींगवाला है तिससे गौ है यह अनैकान्तिकका उदाहरणहै ॥ १७ ॥

आत्मेन्द्रियार्थसन्निकर्षाद्यन्निष्पद्यतेतदन्यतः १८ ॥

अर्थ–आत्मा व इंद्रिय व इंद्रियोंके अर्थके सन्निकर्ष (आवरणरहित संयोग) से जो ज्ञान होता है वह अन्य (भिन्न) है ॥ १८ ॥

प्रवृत्तिनिवृत्तीचप्रत्यगात्मनिदृष्टेपरत्रलिङ्गम् ॥ १९॥

अर्थ–प्रत्येकको अपने आत्मामें ज्ञात हुई प्रवृत्ति व निवृत्ति अन्य आत्मा होनेमें लिंग है ॥ १९ ॥

इति तृतीयाध्यायस्य प्रथममाह्निकम् ।

आत्मेन्द्रियार्थसन्निकर्षेज्ञानस्यभावोऽभावश्च मनसोलिङ्गम् ॥ १ ॥

अर्थ–आत्मा व इन्द्रियके अर्थोंके सन्निकर्ष होनेमें ज्ञानका होना व न होना मनका लिंग (मनके होनेका लक्षण) है ॥ १ ॥

तस्यद्रव्यत्वनित्यत्वेवायुनाऽव्याख्याते ॥ २ ॥

अर्थ–उसका द्रव्यत्व व नित्यत्व वायुके समान व्याख्यात है ॥२॥

प्रयत्नायौगपद्याज्ज्ञानायौगपद्याच्चैकम् ॥ ३ ॥

अर्थ–प्रयत्नोंके युगपत् (अनेकका एक वारगी होना) न होनेसे व ज्ञानोंके युगपत् न होनेसे एक है ॥ ३ ॥

प्राणापाननिमेषोन्मेषजीवनमनोगतीन्द्रियान्तर-विकाराःसुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नाश्चात्मनोलिङ्गानि ४॥

अर्थ–प्राण, अपान, निमेष, उन्मेष जीवन, मनोगति (मनकी गति), इंद्रियान्तरविकार (एक इंद्रियके विषयका प्रत्यक्ष होनेसे दूसरे इंद्रियमेंभी विषयसम्बन्धके स्मरणसे विकारहोना), सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्नभी आत्माके लिंग हैं ॥ ४ ॥

तस्यद्रव्यत्वनित्यत्वेवायुनाव्याख्याते ॥ ५ ॥

अर्थ–उसका द्रव्यत्व व नित्यत्व वायुके समान व्याख्यात है॥५॥

यज्ञदत्तइतिसन्निकर्षेप्रत्यक्षाभावाद्दृष्टंलिङ्गंनविद्यते॥६॥

अर्थ–सन्निकर्षमें यह यज्ञदत्त है ऐसा प्रत्यक्ष न होनेसे दृष्ट (प्रत्यक्ष) लिंग नहीं है ॥ ६ ॥

सामान्यतोदृष्टाच्चाविशेषः ॥ ७ ॥

अर्थ–सामान्यतो दृष्टसेभी विशेष नहीं है ॥ ७ ॥

तस्मादागमिकः ॥ ८ ॥

अर्थ–तिससे आगमिक है (वेदप्रमाणसे सिद्ध है) ॥ ८ ॥

अहमितिशब्दस्यव्यतिरेकान्नागमिकः ॥ ९ ॥

अर्थ–मैं इस शब्दके भेदसे केवल वेदसे सिद्ध नहीं है ॥ ९ ॥

यदिदृष्टमन्वक्षमहंदेवदत्तोऽहंयज्ञदत्तइति ॥ १० ॥

अर्थ–जो म देवदत्त हूँ मैं यज्ञदत्तहूँ ऐसा ज्ञानप्रत्यक्ष वा इंद्रियजन्य ज्ञान है तो अनुमानसे क्या प्रयोजन है यह सूत्रमें शेष है ॥ १० ॥

दृष्टआत्मनिलिङ्गेएकएवदृढत्वात्प्रत्यक्षवत्प्रत्ययः ११॥

अर्थ–दृष्ट (प्रत्यक्ष हुये) आत्मामें अनुमान होनेमें एकही दृढ होनेसे प्रत्यक्षके समान प्रत्यय (बोध) होता है ॥ ११ ॥

देवदत्तोगच्छतियज्ञदत्तोगच्छतीत्युपचाराच्छरीरेप्रत्ययः ॥ १२ ॥

अर्थ–देवदत्त जाता है यज्ञदत्त जाता है यह उपचारसे शरीरमें प्रत्यय (बोध) होताहै ॥ १२ ॥

संदिग्धस्तूपचारः ॥ १३ ॥

अर्थ–उपचार तो संदिग्ध (संदेहयुक्त) है ॥ १३ ॥

अहमितिप्रत्यगात्मनिभावात्परत्राभावादर्थान्तरप्रत्यक्षः ॥ १४ ॥

अर्थ–मैं यह बोध अपन आत्मामें होनेसे परमें न होनेसे भिन्न होना प्रत्यक्ष है ॥ १४ ॥

देवदत्तोगच्छतीत्युपचारादभिमानात्तावच्छरीरप्रत्यक्षोऽहंकारः ॥ १५ ॥

अर्थ–देवदत्त चलता है यह बोध उपचारसे अभिमानद्वारा शरीरप्रत्यक्ष (जिसमें शरीरप्रत्यक्षका विषय होताहै वह) अहंकारहै अर्थात् शरीरको प्रत्यक्ष वा प्रत्यक्षका विषय करनेवाला अहंकार है ॥ १५ ॥

संदिग्धस्तूपचारः ॥ १६ ॥

अर्थ–उपचार तो संदिग्ध है ॥ १६ ॥

नतुशरीरविशेषाद्यज्ञदत्तविष्णुमित्रयोर्ज्ञानंविषयः ॥ १७

अर्थ–शरीरविशेषसे (शरीरके भिन्न होनेसे) यज्ञदत्त व विष्णुमित्रका ज्ञानविषय (प्रत्यक्षका विषय) नहीं होता है ॥ १७ ॥

**अहमितिमुख्ययोग्याभ्यांशब्दवद्व्यतिरेका-
व्यभिचाराद्विशेषसिद्धेर्नागमिकः ॥ १८ ॥**

अर्थ–मैंका बोध मुख्य व योग्य (दृश्य गुणों) से शब्दके समान व्यतिरेक (भेद) का व्यभिचार न होनेसे अर्थात् व्यतिरेककी व्याप्तिसे, विशेषकी सिद्धिसे आगमिक (वेदप्रमाणसे सिद्ध) नहीं है ॥

सुखदुःखज्ञाननिष्पत्त्यविशेषादैकात्म्यम् ॥ १९ ॥

अर्थ–सुख दुःख व ज्ञानकी उत्पत्ति विशेष न होनेसे आत्मा एकहै ॥ १९ ॥

व्यवस्थातोनाना ॥ २०

अर्थ–व्यवस्थासे (अवस्थाभेदसे) अनेकहैं ॥ २० ॥

शास्त्रसामर्थ्याच्च ॥ २१ ॥

अर्थ–शास्त्रके सामर्थ्यसेभी ॥ २१ ॥

इति तृतीयाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम् ॥ तृतीयाध्यायः समाप्तः ॥ ३ ॥

सदकारणवन्नित्यम् ॥ १ ॥

अर्थ–सत् (विद्यमान) कारणरहित नित्य है ॥ १ ॥

तस्यकार्यंलिङ्गम् ॥ २ ॥

अर्थ–कार्य उसका लिंग है ॥ २ ॥

कारणाभावात्कार्याभावः ॥ ३ ॥

अर्थ–कारणके अभावसे कार्यका अभाव होताहै ॥ ३ ॥

अनित्यइतिविशेषतःप्रतिषेधभावः ॥ ४ ॥

अर्थ–नित्य नहीं है यह प्रतिषेधभाव (नित्य होनेका प्रतिषेध) विशेषहै अर्थात् विशेष पदार्थका है ॥ ४ ॥

अविद्या ॥ ५ ॥

अर्थ–अविद्या (अज्ञान) है ॥ ५ ॥

महत्यनेकद्रव्यत्वाद्रूपाच्चोपलब्धिः ॥ ६ ॥

अर्थ–अनेक द्रव्यवान होने व रूपसे महान द्रव्यमें (बडे द्रव्यमें) प्रत्यक्ष होताहै ॥ ६ ॥

सत्यपिद्रव्यत्वेमहत्त्वेरूपसंस्काराभावाद्वायोरनुपलब्धिः ॥ ७ ॥

अर्थ–द्रव्य होने व महान होनेपरभी रूपके संस्कारके अभावसे वायुकी उपलब्धि नहीं होती अर्थात् वायु प्रत्यक्ष नहीं होता ॥ ७ ॥

अनेकद्रव्यसमवायाद्रूपविशेषाच्चरूपोपलब्धिः ॥ ८ ॥

अर्थ–अनेक द्रव्यके समवायसे व रूपविशेषसे रूपकी उपलब्धि (प्रत्यक्षता) होतीहै ॥ ८ ॥

तेनरसगंधस्पर्शेषुज्ञानंविख्यातम् ॥ ९ ॥

अर्थ–उसी प्रकारसे रस गंध स्पर्शोमें ज्ञान व्याख्यात है ॥ ९ ॥

तस्याभावादव्यभिचारः ॥ १० ॥

अर्थ–उसके अभावसे व्यभिचार नहींहै ॥ १० ॥

संख्याःपरिमाणानिपृथक्त्वंसंयोगविभागौपरत्वापरत्वेकर्मचरूपिद्रव्यसमवायाच्चाक्षुषाणि ॥ ११ ॥

अर्थ–संख्या परिमाण पृथक्त्व संयोग विभाग परत्व अपरत्व व कर्म रूपवान द्रव्यके समवायसे नेत्रसे प्रत्यक्ष होनेवाले हैं अर्थात् नेत्रसे देखे जातेहैं ॥ ११ ॥

अरूपिष्वचाक्षुषाणि ॥ १२ ॥

अर्थ–रूपरहित पदार्थोंमें नेत्रसे प्रत्यक्ष नहीं होते ॥ १२ ॥

एतेनगुणत्वेभावेचसर्वेन्द्रियंव्याख्यातम् ॥ १३ ॥

अर्थ–इसी प्रकारसे गुणहोनेमें व भावमें सब इन्द्रियजन्य ज्ञान व्याख्यात है ॥ १३ ॥

इति चतुर्थाध्यायस्य प्रथममाह्निकम् ।

तत्पुनःपृथिव्यादिकार्यद्रव्यं त्रिविधंशरीरेन्द्रियविषयसंज्ञकम् ॥ १ ॥

अर्थ–फिर वह (पूर्वमें कहे गये) पृथिवी आदि कार्य द्रव्य शरीर इन्द्रिय व विषयसंज्ञक (नामवाला) तीन प्रकारका होताहै ॥ १ ॥

प्रत्यक्षाप्रत्यक्षाणां संयोगस्या-प्रत्यक्षत्वात्पञ्चात्मकंनविद्यते ॥ २ ॥

अर्थ–प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्षोंका संयोग प्रत्यक्ष न होनेसे पंचात्मक नहीं है ॥ २ ॥

गुणान्तराप्रादुर्भावाच्चनत्र्यात्मकम् ॥ ३ ॥

अर्थ–अन्य गुणके प्रकट न होनेसे त्र्यात्मक (पृथ्वी जल तेज तीन भूतोंसे संयुक्त) नहीं है ॥ ३ ॥

अणुसंयोगस्त्वप्रतिषिद्धः ॥ ४ ॥

अर्थ–परन्तु अणुआका संयोग प्रतिषेधरहितहै ॥ ४ ॥

तत्रशरीरंद्विविधंयोनिजमयोनिजञ्च ॥ ५ ॥

अर्थ—तिनमें शरीर योनिज व अयोनिज दोप्रकारकाहै ॥ ५ ॥

अनियतदिग्देशपूर्वकत्वात् ॥ ६ ॥

अर्थ—नियत दिशा व देश पूर्वक न होनेसे ॥ ६ ॥

धर्मविशेषाच्च ॥ ७ ॥

अर्थ—धर्मविशेषसेभी ॥ ७ ॥

समाख्याभावाच्च ॥ ८ ॥

अर्थ—नामोंके होनेसेभी ॥ ८ ॥

संज्ञायाअनादित्वात् ॥ ९ ॥

अर्थ—संज्ञाके अनादि होनेसे ॥ ९ ॥

सन्त्ययोनिजाः ॥ १० ॥

अर्थ—विनायोनि उत्पन्न हैं ॥ १० ॥

वेदलिङ्गाच्च ॥ ११ ॥

अर्थ—वेदलिंगसे (वेदके प्रमाणसे अथवा वेदद्वारा प्रमाण होनेसे) भी ॥ ११ ॥

इति चतुर्थाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम् । चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः ॥ ४ ॥

आत्मसंयोगप्रयत्नाभ्यांहस्तेकर्म ॥ १ ॥

अर्थ—आत्माके संयोग व प्रयत्नसे हाथमें कर्म होता है ॥ १ ॥

तथाहस्तसंयोगाच्चमुसलेकर्म ॥ २ ॥

अर्थ—तथा हाथके संयोगसे मुसलमें कर्म होता है ॥ २ ॥

अभिघातजमुसलादौकर्मणिव्यतिरेकादका-
रणंहस्तसंयोगः ॥ ३ ॥

अर्थ—अभिघात (ठोकर वा चोट) से उत्पन्न कर्म मुसलआदिमें कर्म पृथक् होनेसे हाथका संयोग कारण नहीं है ॥ ३ ॥

तथात्मसंयोगोहस्तकर्मणि ॥ ४ ॥

अर्थ–तथा हाथके कर्ममें आत्माका संयोग कारण नहीं है ॥ ४ ॥

अभिघातान्मुसलसंयोगाद्धस्तेकर्म ॥ ५ ॥

अर्थ–अभिघातसे व मुसलके संयोगसे हाथमें कर्म होता है ॥ ५ ॥

आत्मकर्महस्तसंयोगाच्च ॥ ६ ॥

अर्थ– आत्माका कर्ममें हाथके संयोगसे ॥ ६ ॥

संयोगाभावेगुरुत्वात्पतनम् ॥ ७ ॥

अर्थ–संयोगके न होनेमें गुरुत्व (गरुआई) से पतन (गिरना) होता है ॥ ७ ॥

नोदनविशेषाभावान्नोर्ध्वंनतिर्यग्गमनम् ॥ ८ ॥

अर्थ–प्रेरणाविशेषके अभावसे न ऊपर गमन होता है न तिरछा गमन होता है ॥ ८ ॥

प्रयत्नविशेषान्नोदनविशेषः ॥ ९ ॥

अर्थ–प्रयत्नविशेषसे नोदन (प्रेरणा) विशेष होता है ॥ ९ ॥

नोदनविशेषादुदसनविशेषः ॥ १० ॥

अर्थ–प्रेरणविशेषसे विशेष ऊपरका फेंकना होता है ॥ १० ॥

हस्तकर्मणादारककर्मव्याख्यातम् ॥ ११ ॥

अर्थ–हाथके कर्मके समान बालकका कर्म व्याख्यात है ॥ ११ ॥

तथादग्धस्यविस्फोटने ॥ १२ ॥

अर्थ–तैसे ही दग्ध (जले वा जलाये) का कर्म विस्फोटन (फूटने) में ॥ १२ ॥

प्रयत्नाभावेप्रसुप्तस्यचलनम् ॥ १३ ॥

अर्थ–प्रयत्नके न होनेमें सुषुप्तका चलन कर्म होता है ॥ १३ ॥

तृणेकर्मवायुसंयोगात् ॥ १४ ॥

अर्थ–वायुके संयोगसे तृणमें कर्म होता है ॥ १४ ॥

मणिगमनंसूच्यभिसर्पणमदृष्टकारणम् ॥ १५ ॥

अर्थ–मणिके चलने व सूजियोंके सरकने वा सन्मुख चलनेमें अदृष्ट कारण है ॥ १५ ॥

इषावयुगपत्संयोगविशेषाःकर्मान्यत्वेहेतुः ॥ १६ ॥

अर्थ–अनेक एक साथ न होनेवाले संयोगविशेष बाणमें कर्मके अन्य होनेमें हेतु हैं ॥ १६ ॥

नोदनादाद्यमिषोःकर्मतत्कर्मकारिताच्चसंस्कारादुत्तरंतथोत्तरमुत्तरञ्च ॥ १७ ॥

अर्थ–बाणका आद्य (आदिमें हुआ) कर्म नोदनसे(प्रेरणासे) होता है व आद्यकर्मसे कराये गये बाणसे हुये वेगरूप संस्कारसे उत्तरकर्म तथा एकएकसे उत्तरकर्म होता है अर्थात् आदिकर्मके कारण (हेतु) से हुये बाणके (कर्म) वेगरूप संस्कारसे उत्तरउत्तर कर्म होतेहैं ॥ १७ ॥

संस्काराभावेगुरुत्वात्पतनम् ॥ १८ ॥

अर्थ-संस्कारके अभावमें (न रहनेमें) गुरुत्वसे पतन होता है १८

इति पंचमाध्यायस्य प्रथममाह्निकम् ।

नोदनादभिघातात्संयुक्तसंयोगाच्चपृथिव्यांकर्म॥१॥

अर्थ–प्रेरणासे अभिघातसे संयुक्तसंयोगसे पृथिवीमें (पृथिवीकार्यद्रव्यमें) कर्म होता है ॥ १ ॥

तद्विशेषेणादृष्टकारितम् ॥ २ ॥

अर्थ–उनके विशेष (भेद) से हुये कर्म अदृष्ट कारणसे होतेहैं ॥२॥

अपांसंयोगाभावेगुरुत्वात्पतनम् ॥ ३ ॥

अर्थ-संयोगके न रहनेमें गुरुत्वसे जलोंका पतन होता है ॥ ३ ॥

द्रवत्वात्स्यंदनम् ॥ ४ ॥

अर्थ-जलके द्रवत्वसे (पतला होनेसे) बहना होता है अर्थात् बहता है ॥ ४ ॥

नाड्योवायुसंयोगादारोहणम् ॥ ५ ॥

अर्थ-नाडी (सूर्यकी किरणें) व वायुके संयोगसे जलके आरोहण (ऊपर चढनेको) करती हैं ॥ ५ ॥

नोदनापीडनात्संयुक्तसंयोगाच्च ॥ ६ ॥

अर्थ-नोदनसे पीडनसे (घातसे) व संयुक्तसंयोगसे ॥ ६ ॥

वृक्षाभिसर्पणमित्यदृष्टकारितम् ॥ ७ ॥

अर्थ-वृक्षमें जलका अभिसर्पण (जलका सब वृक्षमें जाना) अदृष्टकारणसे होता है ॥ ७ ॥

अपांसंघातोविलयनंचतेजःसंयोगात् ॥ ८ ॥

अर्थ-जलोंका जमना व पिघलना तेजके संयोगसे होता है ॥ ८ ॥

तत्रविस्फूर्जथुर्लिङ्गम् ॥ ९ ॥

अर्थ-तिनमें घोरगरज लिङ्ग (चिह्न) है ॥ ९ ॥

वैदिकश्च ॥ १० ॥

अर्थ-वैदिक भी है ॥ १० ॥

अपांसंयोगाद्विभागाच्चस्तनयित्नोः ॥ ११ ॥

अर्थ-जलोंके संयोगसे व मेघके विभागसे ॥ ११ ॥

पृथिवीकर्मणातेजःकर्मवायुकर्मचव्याख्यातम् ॥ १२ ॥

अर्थ–पृथिवीकर्मके समान तेजका कर्म व वायुका कर्म व्याख्यात है ॥ १२ ॥

अग्नेरूर्ध्वज्वलनंवायोस्तिर्यक्पवनमणूनांमनसश्चाद्यकर्मादृष्टकारितम् ॥ १३ ॥

अर्थ–अग्निकी ज्वालाका ऊपरको उठना वायुका तिरछा वहना अणुओंका व मनका आद्यकर्म (सृष्टिकी आदिमें हुआ कर्म) अदृष्टकारणसे होता है ॥ १३ ॥

हस्तकर्मणामनसःकर्मव्याख्यातम् ॥ १४ ॥

अर्थ–हाथके कर्मके समान मनका कर्म व्याख्यात है ॥ १४ ॥

आत्मेन्द्रियमनोर्थसन्निकर्षात्सुखदुःखे ॥ १५ ॥

अर्थ–आत्मा, इन्द्रिय, मन व अर्थके सन्निकर्षसे सुख व दुःख होते हैं ॥ १५ ॥

तदनारम्भआत्मस्थेमनसिशरीरस्यदुःखाभावःसंयोगः ॥ १६ ॥

अर्थ–आत्मामें स्थिरहुये मनमें उसका आरंभ (मनके कर्मका आरभ) नं होना शरीरके दुःखका अभाव होना संयोग (योग) है ॥ १६ ॥

अपसर्पणमुपसर्पणमशितपीतसंयोगाः कार्यान्तरसंयोगाश्चेत्यदृष्टकारितानि ॥ १७ ॥

अर्थ–देहसे मनका निकलना व देहमें प्रवेश करना खायेहुये व पिये हुयेके साथ संयोग व अन्यकार्योंके संयोग अदृष्टकारणसे होते हैं ॥ १७ ॥

तदभावेसंयोगाभावोऽप्रादुर्भावश्चमोक्षः ॥ १८ ॥

अर्थ–उसके अभावमें संयोगका अभाव व प्रादुर्भाव (प्रकटता) न होना मोक्ष है ॥ १८ ॥

द्रव्यगुणकर्मनिष्पत्तिवैधर्म्याद्भावस्तमः ॥ १९ ॥

अर्थ–द्रव्य गुण कर्मके सिद्धान्तके विरुद्ध धर्म होनेसे तम अभाव है ॥ १९ ॥

तेजसोद्रव्यान्तरेणावरणाच्च ॥ २० ॥

अर्थ–तेजका अन्यद्रव्यसे आवरण होनेसे भी ॥ २० ॥

दिक्कालाकाशञ्चक्रियावद्वैधर्म्यान्निष्क्रियाणि ॥ २१ ॥

अर्थ–दिशा काल व आकाश क्रियावान द्रव्योंसे विरुद्ध धर्म-वाले होनेसे क्रियारहितहैं ॥ २१ ॥

एतेनकर्माणिगुणाश्चव्याख्याताः ॥ २२ ॥

अर्थ–ऐसे ही कर्म व गुण व्याख्यात हैं ॥ २२ ॥

निष्क्रियाणांसमवायःकर्मभ्योनिषिद्धः ॥ २३ ॥

अर्थ–क्रियारहित पदार्थोंका समवाय कर्मोंसे निषिद्ध (निषेध किया गया) है ॥ २३ ॥

कारणंत्वसमवायिनोगुणाः ॥ २४ ॥

अर्थ–परन्तु गुण असमवायिका कारण हैं ॥ २४ ॥

गुणैर्दिग्व्याख्याता ॥ २५ ॥

अर्थ–गुणोंके समान दिशा व्याख्यात है ॥ २५ ॥

कारणेनकालः ॥ २६ ॥

अर्थ–कारणके समान काल है ॥ २६ ॥

इतिपञ्चमाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम् । इति पञ्चमाध्यायःसमाप्तः ॥ ५ ॥

बुद्धिपूर्वावाक्यकृतिर्वेदे ॥ १ ॥

अर्थ–बुद्धिपूर्वक वाक्यकी रचना वेदमें है ॥ १ ॥

ब्राह्मणेसंज्ञाकर्मसिद्धिलिङ्गम् ॥ २ ॥

अर्थ–ब्राह्मणमें संज्ञाकर्म (नामकरण वा नामवर्णन) सिद्ध होनेका चिह्न है ॥ २ ॥

बुद्धिपूर्वोददातिः ॥ ३ ॥

अर्थ–बुद्धिपूर्वक दान है अर्थात् दानका प्रतिपादन है ॥ ३ ॥

तथाप्रतिग्रहः ॥ ४ ॥

अर्थ–तैसेही प्रतिग्रह है ॥ ४ ॥

आत्मान्तरगुणानामात्मान्तरेऽकारणत्वात् ॥ ५ ॥

अर्थ–अन्य आत्माके गुण अन्यआत्मामें कारण न होनेसे ॥ ५ ॥

तद्दुष्टभोजनेनविद्यते ॥ ६ ॥

अर्थ–वह दुष्टके भोजनमें नहीं होता ॥ ६ ॥

दुष्टंहिंसायाम् ॥ ७ ॥

अर्थ–जो हिंसामें प्रवृत्त होता है वह दुष्टहै ॥ ७ ॥

तस्यसमभिव्याहारतोदोषः ॥ ८ ॥

अर्थ–उसकी संगतिसे दोष होता है ॥ ८ ॥

तददुष्टेनविद्यते ॥ ९ ॥

अर्थ–वह अर्थात् दोष जो दुष्ट नहीं है उसमें नहीं होता ॥ ९ ॥

पुनर्विशिष्टेप्रवृत्तिः ॥ १० ॥

अर्थ–फिर विशिष्ट (उत्तम) में प्रवृत्ति होनी चाहिये ॥ १० ॥

समेहीनेवाप्रवृत्तिः ॥ ११ ॥

अर्थ–सम अथवा हीनमें प्रवृत्ति हो ॥ ११ ॥

एतेनहीनसमविशिष्टधार्मिकेभ्यःपरस्वादानंव्याख्यातम्

अर्थ–इससे (पूर्वकथनसे) हीन सम विशिष्ट धार्मिकोंसे परसे धनका ग्रहण व्याख्यात है ॥ १२ ॥

तथाविरुद्धानांत्यागः ॥ १३ ॥

अर्थ–तैसेही विरुद्धोंका त्याग है ॥ १३ ॥

हीनेपरेत्यागः ॥ १४ ॥

अर्थ–हीनमें परमें त्याग है अर्थात् परमें त्याग होना उचित है ॥ १४॥

समेआत्मत्यागःपरत्यागोवा ॥ १५ ॥

अर्थ–सममें अपना त्याग वा परका (दूसरेका) त्याग उचित है॥ १५॥

विशिष्टेआत्मत्यागइति ॥ १६ ॥

अर्थ–विशिष्टमें अपना त्याग उचित है ॥ १६ ॥

इति षष्ठाध्यायस्य प्रथममाह्निकम्।

दृष्टादृष्टप्रयोजनानांदृष्टाभावेप्रयोजनमभ्युदयाय ॥१॥

अर्थ–दृष्टप्रयोजन (जिनकामोंका प्रयोजन प्रत्यक्ष होता है) व अदृष्टप्रयोजन (जिनका प्रयोजन प्रत्यक्ष नहीं होता) उनके मध्यमें दृष्टके अभावसे तत्त्वज्ञान वा मोक्षके अर्थ प्रयोजन है ॥ १ ॥

अभिषेचनोपवासब्रह्मचर्यगुरुकुलवासवानप्रस्थयज्ञ-दानप्रोक्षणदिङ्नक्षत्रमन्त्रकालनियमाश्चादृष्टाय ॥२॥

अर्थ–अभिषेचन, उपवास, ब्रह्मचर्य, गुरुकुलवास, वानप्रस्थ, यज्ञ, दान, प्रोक्षण, दिशा, नक्षत्र, मन्त्र व कालनियम अदृष्टके अर्थ हैं ॥ २ ॥

चातुराश्रम्यमुपधाअनुपधाच ॥ ३ ॥

अर्थ–चार आश्रमोंके कर्म उपधा व अनुपधा हैं ॥ ३ ॥

भावदोषउपधाऽदोषोऽनुपधा ॥ ४ ॥

अर्थ–धर्मभावमें दोष होना उपधा, धर्मभावमें दोष न होना अनुपधा है ॥ ४ ॥

यदिष्टरूपरसगंधस्पर्शंप्रोक्षितमभ्युक्षितंचतच्छुचि ॥५॥

अर्थ–जो इष्ट रूप रस गंध स्पर्श प्रोक्षित और अभ्युक्षित हैं वह पवित्र हैं ॥ ५ ॥

अशुचीतिशुचिप्रतिषेधः ॥ ६ ॥

अर्थ–अशुचि यह शुचिका प्रतिषेध है ॥ ६ ॥

अर्थांतरञ्च ॥ ७ ॥

अर्थ–अन्य अर्थभी ॥ ७ ॥

अयतस्यशुचिभोजनादभ्युदयोनविद्यते नियमाभावाद्विद्यतेवार्थान्तरत्वाद्यमस्य ॥ ८ ॥

अर्थ–यमराहितके शुचि भोजन करनेसे नियमके अभावसे कल्याण वा स्वर्ग नहीं होता व होताभी है, यमके अर्थान्तर (भिन्न पदार्थ) होनेसे ॥ ८ ॥

असतिचाभावात् ॥ ९ ॥

अर्थ–नहोनेमेंभी अभावसे (न होनेसे) ॥ ९ ॥

सुखाद्रागः ॥ १० ॥

अर्थ–सुखसे राग होता है ॥ १० ॥

तन्मयत्वाच्च ॥ ११ ॥

अर्थ–उसमिय होनेसेभी ॥ ११ ॥

अदृष्टाच्च ॥ १२ ॥

अर्थ–अदृष्टसेभी ॥ १२ ॥

जातिविशेषाच्च ॥ १३ ॥

अर्थ–जातिविशेषसेभी ॥ १३ ॥

इच्छाद्वेषपूर्विकाधर्माधर्मप्रवृत्तिः ॥ १४ ॥

अर्थ–इच्छा व द्वेषपूर्वक धर्म व अधर्ममें प्रवृत्ति होती है ॥ १४ ॥

तत्संयोगोविभागः ॥ १५ ॥

अर्थ–तिनसे संयोग व विभाग होता है ॥ १५ ॥

आत्मगुणकर्मसुमोक्षोऽव्याख्यातः ॥ १६ ॥

अर्थ–आत्माके गुणकर्मोंमें मोक्ष व्याख्यात है ॥ १६ ॥

इति षष्ठाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम् । इति षष्ठाध्यायः समाप्तः ॥ ६ ॥

उक्तागुणाः ॥ १ ॥

अर्थ–गुण कहे गये हैं ॥ १ ॥

पृथिव्यादिरूपरसगंधस्पर्शा द्रव्यानित्यत्वादनित्याश्च ॥ २ ॥

अर्थ–पृथिवी आदिमें रूप रस गंध स्पर्शभी द्रव्यके अनित्य हानेसे अनित्य हैं ॥ २ ॥

एतेननित्येषुनित्यत्वमुक्तम् ॥ ३ ॥

अर्थ–इसी प्रकारसे नित्योंमें नित्य होना कहा गया है ॥ ३ ॥

अप्सुतेजसिवायौचनित्याद्रव्यनित्यत्वात् ॥ ४ ॥

अर्थ–जलोंमें, तेजमें , वायुमें द्रव्यके नित्य होनेसे नित्य है॥ ४॥

अनित्येष्वनित्याद्रव्यानित्यत्वात् ॥ ५ ॥

अर्थ–अनित्योंमें द्रव्यके अनित्य होनेसे अनित्य है ॥ ५ ॥

कारणगुणपूर्वकाः पृथिव्यांपाकजाः ॥ ६ ॥

अर्थ–कारण गुणपूर्वक पृथिवींमें पाकज (अग्निमें पकनेसे उत्पन्न) गुण होते हैं ॥ ६ ॥

एकद्रव्यत्वात् ॥ ७ ॥

अर्थ–एक द्रव्य (एक द्रव्यमें रहनेवाला) होनेसे ॥ ७ ॥

अणोर्महतश्चोपलब्ध्यनुपलब्धीनित्येव्याख्याते ॥ ८॥

अर्थ—अणु व महत्की उपलब्धि (प्रत्यक्ष होना) व अनुपलब्धि (प्रत्यक्ष न होना) नित्य व्याख्यात है ॥ ८ ॥

कारणबहुत्वाच्च ॥ ९ ॥

अर्थ—कारण बहुत होनेसेभी ॥ ९ ॥

अतोविपरीतमणु ॥ १० ॥

अर्थ—इससे विपरीत अणु है ॥ १० ॥

अणुमहदितितस्मिन्नविशेषभावाद्विशेषाभावाच्च॥ ११॥

अर्थ—जो अणु व महत् ऐसा व्यवहार व ज्ञान है तिसमें विशेषके भावसे (होनेसे) व विशेषके अभावसे (न होनेसे) ॥११॥

एककालत्वात् ॥ १२ ॥

अर्थ—एक काल होनेसे ॥ १२ ॥

दृष्टान्ताच्च ॥ १३ ॥

अर्थ—दृष्टान्तसेभी ॥ १३ ॥

अणुत्वमहत्त्वयोरणुत्वमहत्त्वाभावःकर्मगुणैर्व्याख्यातः

अर्थ—अणुत्व व महत्त्वमें अणुत्व व महत्त्वका न होना कर्म व गुणोंके समान व्याख्यात है ॥ १४ ॥

कर्मभिःकर्माणिगुणैश्चगुणाव्याख्याताः ॥ १५ ॥

अर्थ—कर्मोंसे रहित कर्म गुणोंसे रहित गुण व्याख्यात हैं॥ १५ ॥

अणुत्वमहत्त्वाभ्यांकर्मगुणाश्चव्याख्याताः ॥ १६ ॥

अर्थ—अणुत्व महत्त्वसे रहित कर्म व गुण व्याख्यात हैं ॥ १६ ॥

एतेनह्रस्वदीर्घत्वेव्याख्याते ॥ १७ ॥

अर्थ—इसी प्रकारसे ह्रस्वत्व व दीर्घत्व व्याख्यात हैं ॥ १७ ॥

अनित्येऽनित्यम् ॥ १८ ॥

अर्थ—अनित्यमें अनित्य है ॥ १८ ॥

नित्येनित्यम् ॥ १९ ॥

अर्थ—नित्यमें नित्य है ॥ १९ ॥

नित्यंपरिमण्डलम् ॥ २० ॥

अर्थ—परिमण्डल नित्य है ॥ २० ॥

अविद्याचविद्यालिंगम् ॥ २१ ॥

अर्थ—और अविद्या विद्याका लिंग (चिह्न) है ॥ २१ ॥

विभवान्महानाकाशस्तथाचात्मा ॥ २२ ॥

अर्थ—विभवसे आकाश महान् (महत्परिमाणवान्) है ऐसेही आत्मा है ॥ २२ ॥

तदभावादणुमनः ॥ २३ ॥

अर्थ—उसके अभावसे मन अणु है ॥ २३ ॥

गुणैर्दिग्व्याख्याता ॥ २४ ॥

अर्थ—गुणोंसे दिशा व्याख्यात है ॥ २४ ॥

कारणेकालः ॥ २५ ॥

अर्थ—कारणमें काल है ॥ २५ ॥

इति सप्तमाध्यायस्य प्रथममाह्निकम् ।

रूपरसगंधस्पर्शव्यतिरेकादर्थान्तरमेकत्वम् ॥ १ ॥

अर्थ—रूप रस गंध स्पर्शोंके अभावसे एकत्व भिन्न पदार्थ है ॥ १॥

तथापृथक्त्वम् ॥ २ ॥

अर्थ—तैसेही पृथक्त्व है ॥ २ ॥

एकत्वैकपृथक्त्वयोरेकत्वैकपृथक्त्वा-
भावोऽणुत्वमहत्त्वाभ्यांव्याख्यातः ॥ ३ ॥

अर्थ—एकत्व व एकपृथक्त्वमें एकत्व व एकपृथक्त्वका अभाव अणुत्व व महत्त्वके समान व्याख्यात है ॥ ३ ॥

निःसंख्यत्वात्कर्मगुणानांसर्वैकत्वंनविद्यते ॥ ४ ॥

अर्थ—कर्म व गुणोंके संख्यारहित होनेसे सबमें एकत्व नहीं है॥४॥

भ्रान्तंतत् ॥ ५ ॥

अथ—वह भ्रान्त है॥ ५ ॥

एकत्वाभावाद्भक्तिस्तुनविद्यते ॥ ६ ॥

अथ—एकत्वके अभावसे भक्ति (गौणत्व) तौ नहीं है ॥ ६ ॥

कार्यकारणयोरेकत्वैकत्वैकपृथक्त्वा-
भावादेकत्वैकपृथक्त्वंनविद्यते ॥ ७ ॥

अर्थ—काय व कारणमें एकत्व व एक पृथक्त्वके अभावसे (न होनेसे) एकत्व व एकपृथक्त्व नहींहै ॥ ७ ॥

एतदनित्ययोर्व्याख्यातम् ॥ ८ ॥

अर्थ—यह अनित्योंका व्याख्यातहै ॥ ८ ॥

अन्यतरकर्मजउभयकर्मजःसंयोगजश्चसंयोगः ॥९॥

अर्थ—अन्यतरके (दोमेंसे एकके) कर्मसे उत्पन्न दोनोंके कर्मसे उत्पन्न व संयोगसे उत्पन्न संयोग होताहै ॥ ९ ॥

एतेनविभागोव्याख्यातः ॥ १० ॥

अर्थ–इसी प्रकारसे विभाग व्याख्यात है ॥ १० ॥

संयोगविभागयोःसंयोगविभागाभावोऽणुत्वमहत्त्वाभ्यांव्याख्यातः ॥ ११ ॥

अर्थ–संयोग व विभागमें संयोग व विभागका अभाव अणुत्व व महत्त्वके समान व्याख्यात है ॥ ११ ॥

कर्मभिःकर्माणिगुणैर्गुणाअणुत्वमहत्त्वाभ्यामिति॥१२॥

अर्थ–कर्मोंसे रहित कर्म गुणोंसे रहित गुण अणुत्व व महत्त्वके समान है ॥ १२ ॥

युत्सिद्ध्यभावात्कार्यकारणयोः संयोगविभागौनविद्येते ॥१३॥

अर्थ–परस्पर संबंधशून्योंकी सिद्धिके अभावसे कार्य व कारणमें संयोग व विभाग नहीं होते ॥ १३ ॥

गुणत्वात् ॥ १४ ॥

अर्थ–गुण होनेसे ॥ १४ ॥

गुणोऽपिविभाव्यते ॥ १५ ॥

अर्थ–गुणभी प्रतिपादन किया जाताहै ॥ १५ ॥

निष्क्रियत्वात् ॥ १६ ॥

अर्थ–क्रियारहित होनेसे ॥ १६ ॥

असति नास्तीतिच प्रयोगात् ॥ १७ ॥

अर्थ–अविद्यमानमें (जो नहीं है उसमें) नहीं है यह व अन्य प्रयोग होनेसे ॥ १७ ॥

शब्दार्थावसम्बंधौ ॥ १८ ॥

अर्थ–शब्द वा अर्थ सम्बंधरहित है ॥ १८ ॥

संयोगिनोदण्डात्समवायिनोविशेषाच्च ॥ १९ ॥

अर्थ–संयोगीका दण्डसे समवायीका विशेषसे ज्ञानहोता है ॥ १९ ॥

सामयिकःशब्दार्थप्रत्ययः ॥ २० ॥

अर्थ–शब्द व अर्थका प्रत्यय (बोध) सामयिक (सांकेतिक) है २०

एकदिक्काभ्यामेककालाभ्यांसन्निकृष्टवि
प्रकृष्टाभ्यांपरमपरञ्च ॥ २१ ॥

अर्थ–निकट व दूरवाले जो एक दिशावाले व एक कालवाले दो पदार्थ हैं उनसे पर व अपर यह व्यवहार होता है ॥ २१ ॥

कारणपरत्वात्कारणापरत्वात् ॥ २२ ॥

अर्थ–कारणके परत्वसे व कारणके अपरत्वसे ॥ २२ ॥

परत्वापरत्वयोःपरत्वापरत्वाभावोऽणुत्वम-
हत्त्वाभ्यांव्याख्यातः ॥ २३ ॥

अर्थ–परत्व व अपरत्वमें परत्व व अपरत्वका अभाव अणुत्व व महत्त्वके समान व्याख्यात है ॥ २३ ॥

कर्मभिःकर्माणि ॥ २४ ॥

अर्थ–कर्मोंसे रहित कर्म हैं ॥ २४ ॥

गुणैर्गुणाः ॥ २५ ॥

अर्थ–गुणोंसे रहित गुण हैं वा होते हैं ॥ २५ ॥

इहेदमितियतःकार्यकारणयोःससमवायः ॥ २६ ॥

अर्थ–जिससे कार्य व कारणका यह प्रत्यय (ज्ञान) होताहै कि इसमें यह है वह समवाय है ॥ २६ ॥

द्रव्यत्वगुणत्वप्रतिषेधोभावेनव्याख्यातः ॥२७॥

अर्थ–द्रव्यत्व व गुणत्वका प्रतिषेध भावके समान व्याख्यात है ॥ २७ ॥

तत्त्वंभावेन ॥ २८ ॥

अर्थ–उसका एक होना भावके समान है ॥ २८ ॥

इति सप्तमाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम् । इति सप्तमाध्यायः समाप्तः ॥ ७ ॥

द्रव्येषुज्ञानंव्याख्यातम् ॥ १ ॥

अर्थ–द्रव्योंमें (द्रव्योंके वर्णनमें) ज्ञान व्याख्यान किया गया है ॥ १ ॥

तत्रात्मामनश्चाप्रत्यक्षे ॥ २ ॥

अर्थ–तिनमें आत्मा व मन प्रत्यक्ष नहीं है ॥ २ ॥

ज्ञाननिर्देशेज्ञाननिष्पत्तिविधिरुक्तः ॥ ३ ॥

अर्थ–ज्ञानके निर्देशमें (ज्ञान वर्णन करनेमें) ज्ञान उत्पन्न होनेकी विधि कही गई है ॥ ३ ॥

गुणकर्मसुसन्निकृष्टेषुज्ञाननिष्पत्तेर्द्रव्यंकारणम् ॥४॥

अर्थ–सन्निकर्षको प्राप्त हुये गुण कर्मोंमें ज्ञानकी उत्पत्तिका कारण द्रव्य है ॥ ४ ॥

सामान्यविशेषेषुसामान्यविशेषाभावात्ततएवज्ञानम् ॥ ५ ॥

सामान्य व विशेषोंमें सामान्य व विशेष के अभावसे उसीसे ज्ञान होता है ॥ ५ ॥

सामान्यविशेषापेक्षंद्रव्यगुणकर्मसु ॥ ६ ॥

अर्थ–द्रव्य गुण व कर्मोंमें सामान्य व विशेषकी अपेक्षावाला ज्ञान होता है ॥ ६ ॥

द्रव्येद्रव्यगुणकर्मापेक्षम् ॥ ७ ॥

अर्थ–द्रव्यमें द्रव्य गुण कर्मकी अपेक्षा करनेवाला ज्ञान होता है॥७॥

गुणकर्मसुगुणकर्माभावाद्गुणकर्मापेक्षंनविद्यते॥ ८ ॥

अर्थ–गुणकर्मोंमें गुणकर्मोंके अभावसे गुण कर्मकी अपेक्षा करनेवाला ज्ञान नहीं होता है ॥ ८ ॥

समवायिनःश्वैत्याच्छ्वैत्यबुद्धेश्च
श्वेतेबुद्धिस्तेएतेकार्यकारणभूते ॥ ९ ॥

अर्थ–समवायि (शुक्लताका समवायि शुक्लद्रव्य) की शुक्लता (शुक्लरूप) व शुक्लताकी बुद्धि (शुक्लरूपके ज्ञान) से श्वेतमें (शुक्लवान द्रव्यमें) ज्ञान होता है (शुक्लद्रव्यमें शुक्ल होनेका ज्ञान होता है) ते यह दोनों कार्य व कारणरूप होते हैं ॥ ९ ॥

द्रव्येष्वनितरेतरकारणः ॥ १० ॥

अर्थ–द्रव्योंमें जो ज्ञान होते हैं एक दूसरेके कारण नहीं होते ॥ १०॥

कारणायौगपद्यात्कारणक्रमाच्च
घटपटादिबुद्धीनांक्रमोनहेतुफलभावात् ॥ ११ ॥

अर्थ–घटपटआदि बुद्धियोंका क्रम कारणोंके युगपत् (एक साथ) न होनेसे व कारणोंके क्रमसे होता है कारण व कार्य भावसे नहीं होता ॥ ११ ॥

इत्यष्टमाध्यायस्य प्रथममाह्निकम् ।

अयमेषत्वयाकृतंभोजयैनमितिबुद्ध्यपेक्षम् ॥ १ ॥

अर्थ—यह वह तुमसे किया गया इसको भोजन कराओ ऐसा ज्ञान वा व्यवहार बुद्ध्यपेक्ष (बुद्धिविशेषणके वा बुद्धिसम्बन्धि) होता है ॥ १ ॥

दृष्टेषुभावाददृष्टेष्वभावात् ॥ २ ॥

अर्थ—दृष्टोंमें भावसे अदृष्टोंमें अभावसे ॥ २ ॥

अर्थइतिद्रव्यगुणकर्मसु ॥ ३ ॥

अर्थ—अर्थ यह शब्द द्रव्यगुणकर्मोंमें ॥ ३ ॥

द्रव्येषुपञ्चात्मकत्वंप्रतिषिद्धम् ॥ ४ ॥

अर्थ—द्रव्योंमें पंचात्मक होना प्रतिषेध किया गया है ॥ ४ ॥

भूयस्त्वाद्गन्धवत्त्वाच्चपृथिवीगन्धज्ञानेप्रकृतिः ॥५॥

अर्थ—अधिकतासे व गंधवत्त्वसे गंधका ज्ञान जिससे होता है उस नासिकाइंद्रियमें पृथिवी प्रकृति है ॥ ५ ॥

तथापस्तेजोवायुश्चरसरूपस्पर्शविशेषात् ॥ ६ ॥

अर्थ—तैसेही जल, तेज, वायु, रस, रूप स्पर्शविशेष होनेसे ॥ ६ ॥

इत्यष्टमाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम् । इत्यष्टमाध्यायः समाप्तः ॥ ८ ॥

क्रियागुणव्यपदेशाभावात्प्रागसत् ॥ १ ॥

अर्थ—क्रिया व गुणका कथन न होनेसे प्रागसत है (पूर्व में नहीं है)१॥

सदसत् ॥ २ ॥

अर्थ—सत् असत् हो जाता है ॥ २ ॥

असतःक्रियागुणव्यपदेशाभावादर्थान्तरम् ॥ ३ ॥

अर्थ—क्रिया व गुणके व्यवहारके अभावसे (न होनेसे) असत्-से सत् भिन्न पदार्थ है ॥ ३ ॥

सच्चासत् ॥ ४ ॥

अर्थ–सत् असत्भी हो जाता है ॥ ४ ॥

यच्चान्यदसदतस्तदसत् ॥ ५ ॥

अर्थ–जो इससे और असत् है वह असत् है ॥ ५ ॥

असदितिभूतप्रत्यक्षाभावाद्भूतस्मृतेर्विरोधिप्रत्यक्षवत् ६

अर्थ–असत् है (विद्यमान नहीं है) यह प्रत्यक्ष होना भूत प्रत्यक्षके अभावसे व भूत स्मृतिसे विरोधीके प्रत्यक्षके समान है ॥ ६ ॥

तथाऽभावेभावप्रत्यक्षत्वाच्च ॥ ७ ॥

अर्थ–तथा अभावमें भाव प्रत्यक्ष होनेसे ॥ ७ ॥

एतेनाघटोऽगौरधर्मश्चव्याख्यातः ॥ ८ ॥

अर्थ–इसीप्रकारसे घटका न होना गौका न होना धर्मका न होना व्याख्यात है ॥ ८ ॥

अभूतंनास्तीत्यनर्थांतरम् ॥ ९ ॥

अर्थ–नहीं हुआ नहीं है यह अनर्थान्तर है अर्थात् एकही अर्थ वाचक है ॥ ९ ॥

नास्तिघटोगेहेइतिसतोघटस्यगेहससर्गप्रतिषेधः ॥१०॥

अर्थ–घरमें घट नहीं है यह सत् घटका व घरके संसर्ग (संबंध वा संयोग) का प्रतिषेध है ॥ १० ॥

आत्मन्यात्ममनसोःसंयोगविशेषादात्मप्रत्यक्षः ॥११॥

अर्थ–आत्मामें आत्मा व मनके संयोगविशेषसे आत्माका प्रत्यक्ष होताहै ॥ ११ ॥

तथाद्रव्यान्तरेषुप्रत्यक्षम् ॥ १२ ॥

अर्थ–तैसाही अन्य द्रव्योंमें प्रत्यक्ष होताहै ॥ १२ ॥

असमाहितान्तःकरणाउपसंहृतसमाधयस्तेषाञ्च ॥ १३ ॥

अर्थ-जो असमाहितान्तःकरण (समाधिरहित अन्तःकरणवियुक्त योगी) है उनको व जो उपसंहृतसमाधि (समाधिको सिद्ध किये हुये सिद्धियांको प्राप्त) हैं उनको आत्माआदि द्रव्य पदार्थोंका प्रत्यक्ष होताहै ॥ १३ ॥

तत्समवायात्कर्मगुणेषु ॥ १४ ॥

अर्थ-उसके समवायसे कर्म व गुणोंमें प्रत्यक्ष ज्ञान होताहै ॥ १४ ॥

आत्मसमवायादात्मगुणेषु ॥ १५ ॥

अर्थ-आत्माके समवायसे आत्माके गुणोंमें ॥ १५ ॥

इति नवमाध्यायस्य प्रथममाह्निकम् ॥

अस्येदंकार्यंकारणंसयोगिविरोधि समवायिचेतिलैङ्गिकम् ॥ १ ॥

अर्थ-इसका यह कार्य है यह कारण है यह संयोगि है यह विरोधि है यह समवायिहै ऐसा ज्ञान होना लैङ्गिक ज्ञानहै ॥ १ ॥

अस्येदंकार्यकारणसंबंधश्चावयवाद्भवति ॥ २ ॥

अर्थ-इसका यह कार्यकारणका सम्बंध अवयवसे होताहै ॥ २ ॥

एतेनशाब्दंव्याख्यातम् ॥ ३ ॥

अर्थ-इसीके समान शाब्द (शब्दसे हुआ) ज्ञान व्याख्यात है ॥ ३ ॥

हेतुरपदेशोलिङ्गंप्रमाणंकरणमित्यनर्थान्तरम् ॥४॥

अर्थ-हेतु, अपदेश, लिङ्ग, प्रमाण, करण यह एकही अर्थवालेहैं अर्थात् इनके अर्थमें भेद नहींहै ॥ ४ ॥

अस्येदंबुद्ध्यपेक्षितत्वात् ॥ ५ ॥

अर्थ–इसका यह इस बुद्धिकी अपेक्षासंयुक्त होनेसे ॥ ५ ॥

आत्ममनसोःसंयोगविशेषात्संस्काराच्चस्मृतिः॥ ६ ॥

अर्थ–आत्मा व मनके संयोगविशेषसे व संस्कारसे स्मृति होतीहै ॥ ६ ॥

तथास्वप्नः ॥ ७ ॥

अर्थ–तैसेही स्वप्न होताहै ॥ ७ ॥

स्वप्नान्तिकम् ॥ ८ ॥

अर्थ–तैसेही स्वप्नके मध्यमें हुआ ज्ञान ॥ ८ ॥

धर्माच्च ॥ ९ ॥

अर्थ–धर्मसे अधर्मसे ॥ ९ ॥

इन्द्रियदोषात्संस्कारदोषाच्चाविद्या ॥ १० ॥

अर्थ–इन्द्रियोंकेदोषसे व संस्कारके दोषसे अविद्याहोतीहै ॥ १० ॥

तद्दुष्टंज्ञानम् ॥ ११ ॥

अर्थ–वह दुष्ट ज्ञान है ॥ ११ ॥

अदुष्टंविद्या ॥ १२ ॥

अर्थ–जो दुष्ट ज्ञान नहीं है वह विद्या है ॥ १२ ॥

आर्षसिद्धदर्शनञ्चधर्मेभ्यः ॥ १३ ॥

अर्थ–ऋषियोंका ज्ञान व सिद्ध दर्शन (सिद्धोंका ज्ञान) धर्मोंसे होता है ॥ १३ ॥

इतिनवमाध्यायस्यद्वितीयमाह्निकम् । इति नवमाध्यायः समाप्तः ॥९॥

इष्टानिष्टकारणविशेषाद्विरोधाच्च मिथःसुखदुःखयोरर्थान्तरभावः ॥ १ ॥

अर्थ–इष्ट (जिनकी इच्छा की जाय) व अनिष्ट (जिनकी इच्छा न की जाय) कारणोंके विशेषसे (भेदसे) व विरोधसे सुख व दुःख दोनोंकी भिन्नता है ॥ १ ॥

संशयनिर्णयान्तराभावश्चज्ञानान्तरत्वेहेतुः ॥ २ ॥

अर्थ–संशय व निर्णयके अन्तर्गत न होनाभी ज्ञानसे भिन्न होनेमें हेतु है ॥ २ ॥

तयोर्निष्पत्तिःप्रत्यक्षलैंगिकाभ्याम् ॥ ३ ॥

अर्थ–उनकी (संशय व निर्णयकी) उत्पत्ति प्रत्यक्ष व अनुमान से होती है ॥ ३ ॥

अभूदित्यपि ॥ ४ ॥

अर्थ–हुआ यहभी ॥ ४ ॥

सतिकार्यादर्शनात् ॥ ५ ॥

अर्थ–होनेपरभी कार्यका ज्ञान न होनेसे ॥ ५ ॥

एकार्थसमवायिकारणान्तरेषुदृष्टत्वात् ॥ ६ ॥

अर्थ–एकार्थ समवायि (एकही अर्थके साथ समवायसम्बंधको (प्राप्त) कारण जो भिन्न कारण हैं उनमें ज्ञान होनेसे ॥ ६ ॥

एकदेशइत्येकस्मिञ्छिरःपृष्ठमुदरम् मर्माणितद्विशेषस्तद्विशेषेभ्यः ॥ ७ ॥

अर्थ–एक शरीरमें एक देशमें शिर, पृष्ठ, उदर व अन्य मर्म अवयव (अङ्ग) जो हैं उनका विशेष (भेद) उनके विशेष कारणों से हैं (कारणोंके भेदसे हैं) ॥ ७ ॥

इति दशमाध्यायस्य प्रथममाह्निकम् ।

कारणमितिद्रव्येकार्यसमवायात् ॥ १ ॥

अर्थ–कारण है (कारण यह ज्ञान वा प्रयोग) द्रव्यमें कार्यके समवायसे ॥ १ ॥

संयोगाद्वा ॥ २ ॥

अर्थ–अथवा संयोगसे ॥ २ ॥

कारणेसमवायात्कर्माणि ॥ ३ ॥

अर्थ–कारणमें समवायसे कर्म ॥ ३ ॥

तथारूपेकारणैकार्थसमवायाच्च ॥ ४ ॥

अर्थ–तैसेही रूपमें कारणके साथ एक अर्थमें समवाय होनेसे ४॥

कारणेसमवायात्संयोगःपटस्य ॥ ५ ॥

अर्थ–कारणमें समवायसे पटका संयोग असमवायि कारण है ५॥

कारणकारणसमवायाच्च ॥ ६ ॥

अर्थ–कारणके कारण समवायसे भी ॥ ६ ॥

संयुक्तसमवायादग्नेर्वैशेषिकम् ॥ ७ ॥

अर्थ–संयुक्त समवायसे अग्निका वैशेषिक (विशेष गुणात्मक उष्णता) गुण निमित्तकारण है ॥ ७ ॥

दृष्टानांदृष्टप्रयोजनानांदृष्टाभावेप्रयोगोऽभ्युदयाय ॥८॥

अर्थ–दृष्टोंका (देखे हुये कर्मोंका) व दृष्टप्रयोजनोंका (जिनका प्रयोजन शास्त्रसे व उपदेशसे ज्ञात है ऐसे कर्मोंका) प्रयोग (अनुष्ठान) दृष्ट न होनेसे (फल दृष्ट न होनेसे अर्थात् प्रत्यक्ष न होनेसे) अभ्युदयके अर्थ है (स्वर्गप्राप्ति वा आत्मज्ञान उदय होनेके लिये है ८

तद्वचनादाम्नायस्यप्रामाण्यम् ॥ ९ ॥

अर्थ–उसके वचनसे वेदका प्रामाण्य है ॥ ९ ॥

इति दशमाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम् । इति दशमोऽध्यायःसमाप्तः॥१०॥
इति कणादर्षिप्रणीतानि वैशेषिकदर्शनसूत्राणि समाप्तानि

अथ वैशेषिकदर्शनसूत्रभाष्यानुवाद ।

ओं परमात्मने नमः ॥ श्रीमत्सत्यपरब्रह्म परमात्माको प्रणाम करके वैशेषिकदर्शनके सूत्रोंका जो भाष्य श्रीमहात्मा प्रशस्तदेवजीने वर्णन किया है उसको देशभाषामें अनुवाद करताहूं उक्त महात्माने इस भाष्यको विलक्षण रीतिसे वर्णन कियाहै अर्थात् बिना किसी सूत्रके प्रतीक रक्खे सब सूत्रोंका आशय हृदयमें धारण करके उसका व्याख्यान कियाहै । यद्यपि बिना अवतरणिकाके यह नहीं ज्ञात होता कि किस २ सूत्रपर क्या क्या भाष्य है परन्तु विद्वान् जन अर्थको विचारकर समझ सक्तेहैं और कहीं कहीं भाष्यके नीचे टिप्पणीमें सूत्र व अध्यायकी संख्या व सूत्र भी रख दिया जायगा इस भाष्यमें जिन षट् पदार्थोंको श्रीकणादमुनिसूत्रोंमें वर्णन किया है उनके आशयको अच्छे प्रकारसे वर्णन कियाहै इससे विद्यार्थियोंको अतिउपकारी समझकर विद्याभिलाषी जनों व विद्या अध्यापन करनेवालोंके हितके लिये देशभाषामें अनुवाद करनेको प्रवृत्त हुवाहूँ विद्वान् सज्जनोंसे यह प्रार्थना है कि जो कहीं प्रमादसे अशुद्ध हो जाय तो अनुग्रह करके शुद्ध व निर्दोष करलेवें अनुवादमें सुगमताके लिये जहाँ संस्कृत शब्द विशेष रक्खा जायगा वहाँ उसके आगे ऐसा ( ) कोष्ठ चिह्न बनाके उसके मध्यमें उसका अर्थ भाषाशब्दमें लिख दिया जायगा अथवा उसका भावार्थ कोष्ठमें लिख दिया जायगा अर्थात् कोष्ठमें जो अर्थ लिखा जायगा वह केवल शब्दहीका अर्थ नहीं लिखा जायगा, जो संस्कृत शब्दके अर्थ व्यक्त करने व उसके स्थानमें रखनेके लिये यथार्थ भाषाशब्द मिलैगा तो भाषाशब्द रक्खा जायगा नहीं तो भावार्थ वा फलितार्थ भाषामें रक्खा जायगा अथवा उसका अभिप्राय कोष्ठमें व्यक्त करदिया जायगा कोष्ठमें जो अर्थ लिखा जायगा

उसका सम्बंध अनुवादमें कहे हुये वाक्योंके साथ न समझना चाहिये जिस शब्दके आगे वह लिखा जायगा केवल उसके अर्थ वा भाव जाननेके लिये लिखा जायगा जिसको शब्दका अर्थ ज्ञातहो उसको कोष्ठके अर्थसे कुछ प्रयोजन न होगा विना कोष्ठके शब्दोंके सम्बंध कोष्ठके लेखको छोडकर पढ़नेसे वाक्यार्थ पूर्ण व यथार्थ ही ग्रहण किया जायगा जहाँ आवश्यकता समझी जायगी वहाँ किसी शब्द वा वाक्यके स्पष्ट समझनेके लिये उसके आगे अर्थात् शब्द लिखके उसका व्याख्यान मूलसे अधिक करदिया जायगा और जहाँ आवश्यकता ज्ञात होगी वहाँ चिह्न बनाके उसी चिह्नको पृष्ठके अधोभागमें लिखके उसकी व्याख्या वा समीक्षा लिखी जायगी और कहीं कहीं सूत्रकारके वचनके प्रमाणमें संख्याके अङ्क रखदिये जायँगे वहाँ प्रथम संख्यासे अध्याय, द्वितीयसे आह्निक, तृतीयसे सूत्रकी संख्या समझनी चाहिये सर्वशक्तिमान परमात्मासे प्रार्थना है किं मेरे मनोरथ अनुसार भाष्यके अनुवादको निर्विघ्न समाप्त करै ।

अथ भाष्यप्रारम्भः ।

कारणरूप ईश्वरको प्रणाम करनेके पश्चात् कणादमुनिको प्रणाम करके महाज्ञानका उदयरूप पदार्थधर्मसंग्रह (पदार्थधर्मसंग्रहनामक भाष्य) वर्णन किया जायगा द्रव्य गुण कर्म सामान्य विशेष समवाय पदार्थोंका साधर्म्य (समधर्म होना) व वैधर्म्य (विरुद्ध धर्म होना) के द्वारा प्राप्त हुवा तत्त्वज्ञान मोक्षका हेतु है वा होताहै और वह तत्त्वज्ञान ईश्वरके उपदेशरूप वेदमें प्रतिपादित होनेसे

---

१ पदार्थ द्रव्य आदि व उनके धर्म साधर्म्य वैधर्म्यरूप इसमें वर्णनकिये गये हैं इससे इस भाष्यका पदार्थधर्मसंग्रह नाम रक्खा है अनेक स्थानोंमेंसे लेके एकत्र जमाकरके कहनेको संग्रह कहते हैं ।

धर्महीसे[1] प्रकट वा प्रकाशमान होता है (प्रश्न) द्रव्य आदि पदार्थ कौन हैं और उनका साधर्म्य व वैधर्म्य क्या है (उत्तर) पृथिवी जल तेज वायु आकाश काल दिशा आत्मा व मन सामान्य व विशेष नामसे कहे गये हैं इनसे भिन्न अधिक अन्य नाम न कहेजानेसे (सूत्रकारसे लोकसे न कहे जानेसे) द्रव्य[2] नवही हैं नवसे अधिक नहीं हैं ।

---

१ धर्महीसे तत्त्वज्ञान होना कहनेका आशय यह है कि सत्यभाषणआदि व ब्रह्मचर्यआदि आश्रममें वेदमें उपदेश कियेगये कर्तव्य उत्तम आचरण वा कर्म व साधनका नाम धर्म है आदरसे बहुतकालतक धर्मसेवनसे सत्त्व (सत्त्वगुणरूपा बुद्धि वा अन्तःकरण) की शुद्धता होती है उसके पश्चात् विवेकसे तत्त्वज्ञान उत्पन्न होता है विनाधर्मके सेवन केवल अध्यात्मविद्या पढ, सुन व समझकर कर्मको त्याग करना व धर्मको तत्त्वज्ञानका उपयोगी न होना कहना केवल अज्ञान है वेदसे प्रथम धर्मकी मुख्यता सिद्ध है इससे तत्त्वज्ञान होनेमें प्रथम कारण होनेसे धर्महीसे तत्त्वज्ञान होता है यह कहना युक्त है क्योंकि विना अन्तःकरणके शुद्ध हुये तत्त्वज्ञान व शुद्ध आत्माके ध्यानमें बुद्धि स्थिर नहीं होती व अन्तःकरणकी शुद्धता धर्मसे होती है योग भी धर्म वा कर्म है ।

२ नवही हैं यह कहनेमें यह शङ्का करते हैं कि प्रकाशमान द्रव्यके चलनेके साथ तम वा छायामें चलनेका व रूपका प्रत्यक्ष होता है क्रिया व गुणवान होनेसे तम द्रव्य है परन्तु क्रिया व रूपवान होनेसे आकाश, काल, दिशा व आत्मा नहीं है, रूपवान होनेसे मन व वायु नहीं है, स्पर्शरहित होनेसे पृथिवी, जल वा तेज नहीं है, इससे तम दशम द्रव्य है नवही कहना युक्त नहीं है. इसका उत्तर यह है कि तम कोई द्रव्य नहीं है प्रकाशका अभाव मात्र है जिस २ देशमें प्रकाश होता है वा होता जाता है उस २ देशमें अंधकार नहीं होता वा नहीं रहता वा नष्ट होता जाता है; और जहां २ प्रकाशका आवरण होता है वा होता जाता है वहां अंधकार होता है वा होता जाता है ऐसे प्रकाश प्राप्तहुये देशमें न रहने व शेषमें रहने व आवरक (२ रोकने वा आड करनेवाले) द्रव्यसे तेजमें आड होनेसे तेजके अभावमें तम प्रत्यक्ष होने व आवरक द्रव्य अथवा तेजवान द्रव्यके चलनेमें जहां २ आवरण रहता वा होता जाता है वहांवहां क्रियाका बोध होनेसे तेजके प्राप्तहुये स्थानमें न रहने व तेज न रहे हुये में प्रत्यक्ष होनेमें तेजके अभावरूप तम वा छायामें भ्रमसे क्रिया व रूपका बोध होता है इससे दशम द्रव्य नहीं है नवही द्रव्य कहना युक्त है ।

रूप रस गंध, स्पर्श संख्या परिमाण पृथक्त्व संयोग विभाग परत्व अपरत्व बुद्धि सुख दुःख इच्छा द्वेष प्रयत्न सत्तरह यह जिनको सूत्रकारने स्पष्ट वर्णन किया है और जो अदृष्ट अर्थात् सूत्रमें च शब्दसे समुच्चित किया है गुरुत्व द्रवत्व स्नेह संस्कार धर्म अधर्म शब्द सात यह मिलकर चौबीस गुण हैं, उत्क्षेपण अवक्षेपण आकुञ्चन प्रसारण व गमन यही पाँच कर्म हैं, गमनके ग्रहणसे भ्रमण रेचन स्यन्दन (वहना वा सरकना) ऊर्द्धज्वलन तिर्यग्गमन (तिरछा चलना) उद्गमन (ऊपर जाना) नमन आदि गमनहीके विशेष भेद हैं भिन्न जाति नहीं हैं।

सामान्य दो प्रकारका है पर व अपर। वह (सामान्य) समान वृत्तिके ज्ञानका कारण है उसमेंसे महाविषय (अधिक विषयवाला) होनेसे सत्ता पर है क्योंकि वह समान होनेमात्रकी वृत्तिका हेतु होनेसे सामान्यही है वा होता है विशेष नहीं होता द्रव्यत्व आदि अल्पविषय-वाले होनेसे अपर हैं क्योंकि यह (अपर) अनुवृत्ति (समानहोनेकी वृत्ति) व व्यावृत्ति (भेद होनेकी वृत्ति) दोनोंका हेतु होनेसे सामान्य होताहै व विशेषभी होताहै नित्य द्रव्य वृत्तिवाले—नित्य द्रव्यमें रहनेवाले अन्त्य अर्थात् अंतमें होनेवाले जिनसे और विशेष न होवै ऐसे गुण विशेष हैं वह निश्चय करके अत्यन्त व्यावृत्ति (पृथक् होनेकी बुद्धि) के हेतु होनेसे विशेषही होतेहैं। विनायोग (विना संयोग) के सिद्ध अर्थात् आपसे सिद्ध आधारी व आधारभूतोंको जो सम्बंध इसमें यह प्रत्यय (ज्ञान) होनेको हेतु होताहै वह समवाय है। इस प्रका-रसे विना धर्मोके धर्मीका उद्देश किया गया ॥ अस्तित्व (होना) अभिधेयत्व (नाम कहनेके योग्य होना) ज्ञेयत्व (जाननेके योग्य होना) यह छः पदार्थोंका साधर्म्य है अर्थात् यह अस्तित्व आदि छः पदार्थोंमें एकही समान होतेहैं आश्रितत्व (आश्रित होना)

नित्य द्रव्योंसे भिन्न अन्यमें(अनित्योंमें) होताहै ॥ द्रव्य आदि पांच समवायि (समवायवान्) व अनेक होतेहैं गुण आदि पांच (गुण कर्म-सामान्य विशेष व समवाय) निर्गुण निष्क्रिय (गुणरहित व क्रिया-रहित) होतेहैं द्रव्य आदि तीनोंका सत्ताके साथ सम्बंध होताहै व तीनों सामान्य व विशेषवान् होते हैं इनका समवाय अर्थनामसे कहा जाता है अर्थात् इनके समवायको अर्थ[1] कहते व यह धर्म अधर्मके कर्ता होते हैं अर्थात् भावविशेषसे धर्म अधर्मके हेतु होते हैं ॥ कारणवानही पदार्थ कार्य व अनित्य होते हैं पारिमाण्डल्य (परमाणुका परिमाण, आदिसे (परिमण्डल व परम महत्त्व आदिसे) भिन्न पदार्थ कारण होतेहैं द्रव्य आदि तीनों कारण होतेहैं नित्य द्रव्यसे अन्य (भिन्न) अर्थात् अनित्य द्रव्यमें आश्रित होतेहैं सामान्यआदि तीन अपने स्वरूपसे होते हैं बुद्धिही उनका लक्षण है अर्थात् बुद्धिहीसे (बुद्धिमात्रसे) ज्ञात होते हैं कार्य, कारण, नहीं होते व सामान्य-विशेषवान् नहीं होते नित्य होते हैं अर्थ व नामसे नहीं कहे जाते पृथिवी आदि नव द्रव्य हैं यह अपने स्वरूपमें आरंभक होते हैं गुणवान् होते हैं कार्य व कारण उनके विरोधी नहीं होते व अन्य गुणोंसे विशेषवान् होते हैं आश्रित न होना व नित्य होना यह धर्म अवयवी द्रव्यसे भिन्नमें होते हैं अर्थात् निरवयव द्रव्यमें होते हैं पृथिवी, जल, तेज, वायु, आत्मा व मन अनेक व अपर जाति हैं ॥ पृथिवी, जल, तेज, वायु, व मन क्रियावान होते हैं मूर्त पर, अपर व वेगवान होते हैं ॥ आकाश, काल, दिशा व आत्मा सर्वगत (सर्वव्यापक) परम, महान् सबके साथ संयोगवाले, सर्वदेशमें

---

१ द्रव्य गुण कर्मको अर्थ कहतेहैं जैसा अध्याय ८ आ० २ सू० ८ में कहा है अर्थ इति द्रव्यगुणकर्मसु, और द्रव्य गुणकर्मोंका द्रव्य गुण कर्मके साथ समवाय है इससे द्रव्य गुण कर्मके समवायको अर्थ नामसे कहा जाना कहाहै अथवा द्रव्य गुण कर्म तीनों अर्थ नामसे वाच्य होनेका अभिप्राय है ॥

एक समान रहनेवाले हैं ॥ पृथिवीआदि पांच भूत इन्द्रियोंके कारण बाह्य इंद्रियोंमेंसे एक एक इंद्रियसे ग्राह्य (ग्रहणके योग्य) व विशेष गुणवाले होते हैं ॥ चार (पृथिवी आदि) द्रव्यके आरंभक व स्पर्शवान होते हैं ॥ तीन प्रत्यक्ष, द्रव (बहनेवाले) व रूपवान् होतेहैं दो (पृथिवी व जल) गुरु (गरू) व रसवान् (स्वादवाले) होते हैं ॥ भूतात्मा (पृथिवी, जल, तेज, वायु व आकाश) वैशेषिक (विशेषसंबंधी) गुणवाले हैं पृथिवीजलरूप (पृथिवी व जलके कार्य) पदार्थोंमें चौदह गुण होते हैं ॥ आकाशात्मा (आकाश कारणसे उत्पन्न वा आकाशके कार्य) पदार्थों (शब्दों) में लाक्षणिक एकदेशमें होनेवाले विशेष गुणवाले होते हैं ॥ दिशा व काल पांच गुणवाले होते हैं व सब उत्पन्न होनेवालोंके निमित्त कारण होते हैं ॥ पृथिवी व तेजमें नैमित्तिक द्रवत्व होनेका योग है ऐसेही सबमें साधर्म्य व विपरीत होनेसे वैधर्म्य वाच्य (कहनेके योग्य) हैं अब एक एकका वैधर्म्य वर्णन कियाजाता है ॥ पृथ्वीत्वके सम्बंधसे अर्थात् पृथिवीके सामान्य विशेषके लक्षणके सम्बंधसे रूप, रस, गंध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, गुरुत्व, द्रवत्व व संस्कारवाली पृथिवी होती है । गुणप्रतिपादन करनेके अधिकारमें रूपआदि गुणविशेष सिद्ध हैं अर्थात् सूत्रकार महात्माने रूप, रस, गंध, स्पर्शवती पृथिवी यह सूत्रमें कहा है इस वचनसे सिद्ध है । संख्याआदि चाक्षुष (चक्षुसे देखने योग्य) है यह कहनेसे सात संख्या आदि चाक्षुष हैं । पतनके उपदेशसे (संयोगके अभावमें गुरुत्वसे पतन होता है ऐसा सूत्रकारके उपदेशसे) गुरुत्व है । जलके समान कहनेसे (अग्निके संयोगसे घी रांगा व मोमका जलके समान द्रवत्व होता है यह अ० २ आह्निक १ सू० ६ में सूत्रकारके कहनेसे) द्रवत्व है (द्रवत्व गुण है) उत्तरकर्म होनेके वचनसे (अ० ५ । १ । १७ में) बाणमें प्रथम कर्म प्रेरणासे होता है फिर उससे उत्पन्न वेगमें

उत्तर कर्म संस्कारसे होता है इस सूत्रकारके वचनसे संस्कार है। अभिप्राय यह है कि पृथिवीके कार्य पदार्थ बाणमें उत्तरकर्मसंस्कार कहनेसे पृथिवीमें संस्कारका होनाभी सिद्ध है पृथिवीहीमें गंध है शुक्लआदि अनेक प्रकारसे रूप हैं मधुर आदि छः प्रकारके रस हैं। गंध दो प्रकारका है सुगंध व दुर्गंध। स्पर्श पृथिवीमें शीत व उष्ण (गरम) न होनेपर भी पाकज (पकनेसे उत्पन्न) स्पर्श उष्ण (गरम) होता है । वह पृथिवी दो प्रकारकी होती है नित्य व अनित्य । परमाणुलक्षणरूप नित्य व कार्यलक्षणरूप अनित्य होती है ॥ और वह स्थिर होनेआदि अवयवोंके सन्निवेशसे विशिष्ट (विशेषगुणसंयुक्त) है ॥ बहुत अपर जातियोंसे संयुक्त है शयन आसनआदि अनेक उपकार करनेवाली है और शरीर इन्द्रिय व विषयनामसे तीन प्रकारके इसके कार्य हैं। उनमें शरीर कार्य दो प्रकारका है योनिज व अयोनिज विनाशुक्र (वीर्य) व शोणित (रुधिर) की अपेक्षा देवता व ऋषियोंके शरीर धर्मविशेष सहित अणुओंसे अयोनिज (विनायोनि उत्पन्न) होते हैं क्षुद्र जन्तुओंके यातना शरीर अधर्म विशेष सहित अणुओंसे उत्पन्न होते हैं शुक्र व शोणितके मलसे उत्पन्न योनिज (योनिसे उत्पन्न) होते हैं और यह दो प्रकारके होते हैं जरायुज व अण्डज मानुष, पशु,मृगोंके शरीर जरायुज हैं पक्षी सर्प आदिकोंके शरीर अण्डज हैं जल आदिसे अनभिभूत (जल आदिके अणुओंसे तिरस्कारको नहीं प्राप्त) पृथिवीके अवयवोंसे आरब्ध (बनीहुई) गंध ज्ञानकी उत्पन्न करनेवाली वा जाननेवाली नासिका इंद्रिय है । द्व्यणुक (दो अणुओंसे युक्त) आदि क्रमसे आरब्ध मृत्तिका, पाषाण, स्थावर तीन प्रकारके विषय हैं । उनमेंसे ईंटें आदि मृत्तिकाके विकार हैं । पत्थर मणि हीरा आदि पाषाण हैं । तृण, गुल्म, औषधि वृक्ष, लता, वितान, वनस्पति स्थावर हैं ॥ इति पृथिवीद्रव्यम् ।

जलत्व (जल होनेका सामान्य विशेष धर्म) के सम्बंधसे जल, रूप, रस, स्पर्श, द्रवत्व, स्नेह, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, गुरुत्व व संस्कार गुणवाला होता है ये गुण पूर्वमें कहे हुये पृथिवीके समान जलमें सूत्रकारके वचनसे सिद्ध हैं जलमें रूप शुक्ल रस मधुर स्पर्श शीत है स्नेह जलहीमें है व द्रवत्व सांसिद्धिक है अर्थात् स्वभावहीसे नित्य सिद्ध है जल नित्य व अनित्य भावसे दो विधका है व शरीर, इंद्रिय व विषय नामसे तीन प्रकारका कार्य (जलका कार्य) है इसमेंसे अयोनिजमात्र शरीर वरुण लोकमें प्रसिद्ध है पृथिवीअवयवोंके उपष्टम्भ (थंभन व स्तंभन) से उपभोगमें समर्थ है जलकी इंद्रिय सब प्राणियोंके रसके ज्ञानकी कारण विजातीय पृथिवीआदिके अवयवो (अणुओं) से तिरस्कारको नहीं प्राप्त ऐसे जलके अवयवोंसे उत्पन्न रसना (जिह्वा.) है व विषय नदी समुद्र बरफ ओला आदि हैं ॥

इति जलद्रव्यम् ।

तेजस्त्व (तेज होनेका सामान्य विशेष धर्म) के अभिसंबंधसे तेज रूप, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, द्रवत्व व संस्कार गुणसहित है पूर्वके समान तेजमें यह सूत्रकारके वचनसे सिद्ध है। रूप तेजका शुक्ल व भास्वर (प्रकाशरूप) है स्पर्श उष्ण (गरम) है द्रवत्व नैमित्तिक है व द्रवत्वभी अणुभाव व कार्यभावसे दो प्रकारका है। शरीर, इन्द्रिय व विषयनामसे कार्य तीन प्रकारका है शरीर अयोनिजमात्र सूर्यलोकमें है पृथिवी सम्बंधी अवयवोंके उपष्टंभसे उपभोगमें समर्थ है । सब प्राणियोंको रूपकी जनानेवाली अन्य पृथिवी आदिके अवयवोंसे तिरस्कारको प्राप्त नहीं ऐसे तेजके अवयवोंसे बनी हुई इन्द्रिय चक्षु (नेत्र) है। विषय चार प्रकारका है भौम, दिव्य, उदर्य व आकरज इनमेंसे काठ इन्धनसे उत्पन्न ऊर्ध्वज्वलनस्वभाव (ऊपरको जलनेका स्वभाववाला) पकाने व पसीना निकालनेमें समर्थ भौम है । इन्धनस

न्वंधरहित सूर्य व विद्युतआदिका तेज दिव्य है । खायेहुये आहारके रसआदि परिणाम करनेमें समर्थ इन्धनरहित उदर्य (उदरवाला) है । सुवर्ण आदि आकरज है सुवर्ण आदिमें उनमें संयुक्त पृथिवी आदिके समवायसे रस आदिकी उपलब्धि (प्रत्यक्षता) होती है ।

इति तेजोद्रव्यम् ॥

वायुत्व (वायुका सामान्यविशेष धर्म होने) के अभिसम्बंध (सम्बंध) से वायु संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व व संस्कार गुणवाला है अर्थात् ये गुण वायुमें हैं । स्पर्श इसका विना पाकसे उत्पन्न (विना अग्निसंयोगसे उत्पन्न हुवा) न गरम है न शीत है । स्पर्शगुण वायुमें सूत्रकारके वचनसे सिद्ध है रूपरहित चक्षुग्राह्य न होनेसे उक्त संख्या आदि सप्त गुण हैं और तृणमें[1] कर्म कहनेसे संस्कार है । यह अणु (परमाणु) व कार्यभावसे दो प्रकारका है । कार्यलक्षणरूप चार प्रकारका है शरीर, इन्द्रिय, विषय व प्राण इनमेंसे केवल अयोनिज शरीर वायुलोकमें है पृथिवीके अवयवोंसे उपष्टंभसे[2] (थंभनेसे) उपभोगमें समर्थ है सब प्राणियोंको स्पर्शकी जनानेवाली पृथिवीआदिके अवयवोंसे तिरस्कारको नहीं प्राप्त वायुके अवयवोंसे बनीहुई सब शरीरमें व्यापक इन्द्रिय त्वचा (खाल वा चमडा) है । विषय, स्पर्शका आश्रय त्वचाइन्द्रियसे जानागया स्पर्श, शब्द, धारण कांपनेका चिह्नरूप तिरछा चलनेका स्वभाववाला मेघआदिकोंके प्रेरण व धारण आदिमें समर्थ पदार्थ वायु है । प्रत्यक्ष न होनेपरभी सम्मूर्छनसे उसके अनेक होनेका अनुमान किया जाता है । समवेग व बलवाले समान जातिवाले विरुद्ध दिशाओंसे आतेहुये वायुओंके परस्पर टक्कर खाने वा भिडजानेको संमूर्छन कहते हैं । यह संमूर्च्छन तृण आदिके घूमने व उपरके चढनेसे अवयववान वायुओंके साथ

१ तृणे कर्म वायुसंयोगात् ५ । १ । ४ इस सूत्रमें कहे हुये वचनसे ।

२ पृथिवीके अवयवोंके उपष्टंभसे (थांभनेसे) यहभी अर्थ ग्राह्य है अर्थात् उपष्टंभ शब्दका अर्थ थंभना व थांभना दोनों होसक्ते हैं ॥

ऊपर जाना प्रत्यक्ष होनेसे अनुमान किया जाता है । शरीरके भीतर रस मल धातुओंके प्रेरण आदिका हेतु प्राण है यह प्राण एक है परन्तु एक होनेपरभी क्रियाभेदसे अपान आदि नामसे (प्राण, अपान, समान, उदान व व्यान नामसे) कहा जाता है ।

इति वायुद्रव्यम् ।

चार पृथिवी आदि महाभूतोंका सृष्टिसंहारविधिवर्णन किया जाता है ब्राह्मप्रमाणसे (ब्रह्माके काल प्रमाणसे) सौवर्षके अन्त होनेमें वर्तमान ब्रह्माके नाश होनेके समयमें संसारमें खिन्न (खेदको प्राप्त) प्राणियोंके विश्रामके लिये रात्रिमें सकल भुवनके पति महेश्वरकी संहार करनेकी इच्छाके समयमें सब आत्माओंमें प्राप्त शरीर इन्द्रिय व महाभूतोंके सम्बन्ध करनेवाले अदृष्टोंकी वृत्तिके निरोध (रोक) होनेमें अर्थात् वृत्ति रुक जानेपर महेश्वरकी इच्छा आत्मा व अणुओंके संयोगसे उत्पन्न कर्मोंसे शरीर व इन्द्रियोंके कारण अणुओंके विभाग होते हैं उन विभागोंसे उनके (शरीर व इन्द्रियोंके) संयोगकी निवृत्ति होनेमें उनका परमाणु-पर्य्यन्त विनाश होता है तैसेही पृथिवी, जल, तेज, वायु महाभूतोंका भी इसी क्रमसे उत्तर उत्तरमें होनेमें पूर्वपूर्वका विनाश होता है विनाश होनेके पश्चात् विभागको प्राप्त परमाणु बने रहते हैं जबतक विभागको प्राप्त (भिन्न भिन्न) परमाणु रहते हैं उतने ही कालतक धर्मअधर्म संस्कारमात्र युक्त आत्मा रहते हैं उसके पश्चात् फिर प्राणियोंके भोग होनेके लिये महेश्वरकी सृष्टि उत्पन्न करनेकी इच्छा होनेके अनन्तर (पश्चात्) सब आत्माओंमें प्राप्त वृत्तिओंसे लब्ध (प्राप्त हुये) अदृष्टोंकी अपेक्षा करने वा रखनेवाले उसके (उक्त विभागको प्राप्त परमाणुओंके) संयोगोंसे वायुके परमाणुओंमें कर्मकी उत्पत्ति होनेमें उनके (वायुपरमाणुओंके) परस्पर संयोगोंसे द्व्यणुकआदि क्रमसे उत्पन्न महावायु अर्थात् महान् वायु उत्पन्न हो आकाशमें अतिशय कम्पायमान स्थित होता है । उसके

पश्चात् उसीमें वायु व जलके परमाणुओंसे उसी क्रमसे महासमुद्र उत्पन्न हो अतिशय बहताहुवा स्थित होता है उसके पश्चात् उसीमें पार्थिव (पृथिवीके) परमाणुओंसे द्व्यणुकआदि क्रमसे उत्पन्न घनीभूत हो (सघन कठिन रूप हो) महापृथिवी स्थित होती है । उसके पश्चात् उसी महासमुद्रमें तैजस (तेजवाले) परमाणुओंसे द्व्यणुक आदि क्रमसे उत्पन्न महातेजकी राशि देदीप्यमान (आतिशय प्रकाशको करता) स्थित होता है इस प्रकारसे उत्पन्न महाभूतोंमें महेश्वर (परमेश्वर) के ध्यानमात्रसे पृथिवीके अणुओंसहित तैजस अणुओंसे महा अण्ड उत्पन्न होता है । उसमें चारमुखवाले सब लोकोंके पितामह ब्रह्माको सब भुवनोंसहित उत्पन्न कर प्रजाओंकी उत्पत्तिमें नियुक्त करता है । वह परमेश्वरसे नियुक्त (काममें योजित किया गया वा लगायागया) ब्रह्मा अतिशय ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य्यसंयुक्त सब प्राणियोंके कर्मविपाकको जानकर कर्मके अनुसार ज्ञान भोग आयुयुक्त मनसे उत्पन्न प्रजापति, मनु, देव, ऋषि, पितृगण पुत्रोंको व मुख बाहु ऊरु (जंघा) पादसे चारों वर्णोंको और अन्य ऊंचे नीचे प्राणियोंको उत्पन्न कर आशयके अनुसार धर्म, ज्ञान, वैराग्य व ऐश्वर्यके साथ संयोजित करता है[१] ॥

---

१ इन चार महाभूतोंके सृष्टि संहार विधिके वर्णनकी समीक्षा की जातीहै विचारनेसे यह विदित होता है कि यह सृष्टि संहार विधिका व्याख्यान प्रशस्त पाद वा प्रशस्तदेव नामक भाष्यकार महात्माकृत नहीं है इससे प्रमाण माननेके योग्य नहीं है यह पीछेसे प्रक्षिप्त होना विदित होता है प्रक्षिप्त व अप्रमाण होनेके हेतु ये हैं प्रथम यह कि ब्रह्माके नाश होनेके कालमें अर्थात् नाश होनेमें सृष्टिके नाश होनेका हेतु खिन्न प्राणियोंका रात्रिमें विश्राम होना वर्णन किया है यह युक्त नहीं है क्योंकि नष्ट हुये ब्रह्माकी रात्रि हो नहीं सक्ती ब्रह्माकी रात्रिमें विश्राम होना माननेमें ब्रह्माके दिन महीना वर्ष आयु होनेका प्रमाण तथा ब्रह्मा (महेश्वर) के नाशका भी संभव होगा द्वितीय यह कि वायुके पश्चात् क्रम अनुसार आकाशका वर्णन होना चाहिये क्रमको छोडकर चार भूतोंकी सृष्टिका वर्णन करना युक्त नहींहै और महर्षि सूत्रकारने चार महा भूतोंकी सृष्टि व संहारको वर्णन नहीं

आकाश, काल, दिशाके एक एक होनेसे अपर जाति न होनेसे पारिभाषिक (तन्त्रमें कहेहुए) आकाश, काल व दिशा यह तीन नाम होते हैं उनमेंसे (उक्त तीनमेंसे) शब्द, सख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग व विभाग यह एक आकाशके गुण हैं शब्द प्रत्यक्ष होनेमें कारण गुणपूर्वके न होनेसे द्रव्यके रहनेवक द्रव्यमें स्थिर न रहनेसे व आश्रयसे अन्यत्र (अन्यस्थानमें) प्रत्यक्ष होनेसे स्पर्शवाले द्रव्योंका विशेष गुण नहीं है । बाह्य इन्द्रियसे प्रत्यक्ष होनेसे अन्य आत्माओंसे ग्राह्य होनेसे आत्मामें समवाय-सम्बन्ध न होनेसे अहंकारसे विभक्त (भिन्न) ग्रहण होनेसे आत्माका गुण नहीं है । कर्णसे ग्राह्य होनेसे और वैशेषिक गुण भावसे (विशेष सम्बन्धी गुण होनेसे) दिशा, काल व मन द्रव्योंका गुण नहीं है । शेष रहनेसे गुण होकर आकाशके ज्ञान होनेका लिंग है शब्द (शब्दरूप) लिंगके विशेष न होनेसे आकाशका एक होना सिद्ध होता है । उसके (एक होनेके)

किया जो मूलमें नहीं है उसका भाष्य वर्णन किया जाना असंभव है तृतीय यह कि जैसे आधुनिक ग्रंथकारोंने वेदके अनभिज्ञ ब्रह्माके मुख आदिसे ब्राह्मण आदिकी उत्पत्ति बिना समझे लिखाहैं ऐसाही इसमें लिखा है क्योंकि ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् इत्यादि इस मंत्रका अर्थ जो मुख आदिसे ब्राह्मण आदि उत्पन्न होनेका कहते व लिखते हैं यह यथार्थ नहीं है ऐसा अर्थ इस मंत्रका किसी प्रकारसे नहीं होसक्ता क्योंकि न इसमें ब्रह्माका नाम है न पूर्वसे ब्रह्माका सम्बंध है न इसमें जो मुखं शब्द है उसका मुखसे वा मुखसे होनेका अर्थ होता है वेदमें ब्रह्मसे सृष्टि होनेमें यह मंत्र है इस मंत्रका आशय मुख आदि अंगोंके समान क्रमसे ब्राह्मण आदि वर्णोंका उत्कृष्ट वा न्यून अर्थात् उच्च व नीच होना गुणकर्म अनुसार वर्णन करनेका है ब्रह्म-निराकारमें मुखआदिके अभावसे मुख आदिसे उत्पन्न होना कहना असं-गत है व शास्त्रोंमें अनेक आप्त वाक्योंसे गुण कर्महीके अनुसार वर्णविभाग होना सिद्ध होता है इन हेतुओंसे भाष्यकारका व्याख्यान होना स्वीकारके योग्य नहीं है यदि किसी और श्रुतिसे ब्रह्मानामक किसी सिद्धपुरुषके मुख आदिसे उत्पत्ति होना माना जाय तो दोषभी नहीं है परन्तु उक्त श्रुतिसे ऐसा सिद्ध नहीं होता अन्य श्रुति कोई ऐसी हो तो वह दृष्ट नहीं है।

अनुविधानसे अर्थात् जहाँ, एकत्व है वहाँ एक पृथक्त्व भी है इस एकत्वके साथ ही पृथक्त्वभी होनेसे आकाशका अन्य द्रव्योंसे पृथक्त्व है अर्थात् आकाश अन्य द्रव्योंसे भिन्न है । विभुवचनसे (सूत्रकारके) विभु (व्यापक) कहनेके वचनप्रमाणसे अर्थात् अध्याय ७ आह्निक २ सूत्र २२ में यह कहा है कि व्यापक होनेसे जैसे आकाश महान (महापरिमाणवाला) है तैसेही आत्मा है इस वचनप्रमाणसे आकाश महत् परिमाण (महापरिमाणवाला) है शब्द कारण वचनसे अर्थात् अ० ७ आ० २ सूत्र ३१ में सूत्रकारके इस वचनसे कि संयोगसे, विभागसे व शब्दसे शब्दकी सिद्धि होती है संयोग विभाग शब्दके असमवायि कारण हैं व संयोग व विभागका अधिकरण आकाश समवायिकारण है इससे संयोग विभाग गुण आकाशमें हैं गुणवचनसे (आकाशमें गुण होनेका सूत्रकारके वचनसे) व आश्रित न होनेसे द्रव्य है । समान असमानजातीय पदार्थोंका (आकाश) कारण न होनेसे नित्य है श्रोत्रभावसे (कर्णरूपसे) सब प्राणियोंके शब्दज्ञान होनेमें निमित्त है और श्रोत्र श्रवण (कान) का विवर (छिद्र) नामक शब्दका निमित्त (निमित्तकारण) उपभोगका प्राप्त करनेवाला धर्म अधर्मके साथ उपनिबद्ध (सम्बन्धको प्राप्त) आकाशका एकदेश वा अंश है । उस आकाशदेशके नित्य होनेपर भी उपनिबन्धक इन्द्रियके विकल होनेसे (विकार प्राप्तहोनेसे) बाधिर्य (बहिरापन) होजाता है यह आकाशका वर्णन समाप्त हुवा ।

इत्याकाशद्रव्यम् ।

पर अपर व्यतिकर (परस्पर बदलेमें एक दूसरेके लिये करना) यौगपद्य (अनेकका एक साथ होना) चिर (देरका होना) क्षिप्र (जल्दहोना) का प्रत्यय (ज्ञान) होना कालका लिंग (लक्षण वा चिह्न) है अर्थात् इन गुणोंसे काल जाना जाता है इन प्रत्ययोंके विषयमें पूर्व प्रत्ययोंसे विलक्षण इन प्रत्ययोंकी उत्पत्तिमें अन्यनिमित्त सम्भव न होनेसे जो इनमें निमित्त है वह सब

कार्योंके उत्पत्ति, स्थिति व विनाशका हेतु काल है अर्थात् उनके भाक्त (गौण) व्यवहारसे क्षण, लव, निमेष, कला, मुहूर्त, याम, दिन, रात्रि, अर्धमास, मास, ऋतु, अयन, वर्ष, युग, कल्प, मन्वन्तर, प्रलय व महाप्रलय होनेके व्यवहारका हेतु है । संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग व विभाग उसके गुण हैं । कालके लिंग विशेष न होनेसे अर्थात् सामान्य होनेसे कालका एकही होना सिद्ध होता है । जो एक होताहै वही एक व पृथक् होता है इस विधानसे एक व पृथक् है । परहोनेआदि प्रत्ययका कारण द्रव्य काल है सब देशके पुरुष व वस्तुओंमें पर व अपर होने आदि प्रत्ययका कारण काल विना व्यापक होनेके नहीं होसक्ता है इससे कारण द्रव्यमें काल है इस वचनसे (सूत्रकारके वचनसे) अर्थात् अध्याय ७ आह्निक १ सूत्र २९ में कारणमें (परआदि प्रत्ययके कारणद्रव्यमें) काल है ऐसा कालको सूत्रकारने कहा है इस वचन प्रमाणसे परआदिके प्रत्ययके कारण कालमें, महत्परिमाण है । कारणके परत्वसे (परहोनेसे) इत्यादि सूत्रकारके वचनसे अर्थात् परत्व व अपरत्वकी उत्पत्तिमें असमवायि कारण कालका संयोग है इस कथनसे कालमें संयोग होना सिद्ध है उसके नाशसे विभाग होता है । आकाशके समान कालका नित्य होना व द्रव्यहोना सिद्ध होनेपर कालका लिंग विशेष न होनेसे एक होनेपर भी सर्वकार्योंके प्रारम्भ क्रियाओंके साथ निवृत्ति, स्थिति, निरोध उपाधिभेदसे मणि वा पाचकके समान अनेक होनेका व्यवहार होताहै अर्थात् जैसे एक स्फटिकमणि जपाकुसुम आदि अनेक रंगके प्रतिबिंबसे अनेक रूपवान व एकही पाचक अनेक पाकोंके पकानेवाले नामसे कहाजाता है ऐसेही एकही कालमें उपाधिभेदसे अनेक होनेका उपचार होता है ॥

इति कालद्रव्यम् ।

---

१ कार्यकी उत्पत्ति आदिके ।

पूर्वहोना अपरहोना आदिका प्रत्यय (बोध) दिशाका लिंग है मूर्त द्रव्योंमात्रमें इससे यह पूर्वकी तरफ, दक्षिणकी तरफ, पश्चिमकी तरफ, उत्तरकी तरफ, पूर्वदक्षिणकी तरफ, दक्षिणपश्चिमकी तरफ पश्चिम उत्तरकी तरफ उत्तरपूर्वकी तरफ है नीचे है ऊपर है, यह दश प्रत्यय जिससे होते हैं उससे अन्यानिमित्त संभव न होनेसे वह दिशा है । कालके समान सख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग दिशोंके गुण सिद्ध हैं दिशाका लिंगविशेष न होनेसे साक्षात् दिशाके एक होनेपरभी श्रुति स्मृति व लोकके व्यवहारके अर्थ मेरुके प्रदक्षिणमें आवर्तमान (आने जाने वाले) सूर्य्यके जो संयोगरूप लोकपालोंसे परिगृहीत दिशोंके भाग हैं उन यौगिक भागोंकी पूर्व आदि भेदसे परमर्षियोंने दश नाम रक्खे हैं तिससे उपचारसे दशदिशा सिद्ध हैं । उन्हींके फिर देवताओंके अंगीकार करनेसे अर्थात् उनमें देवताओंके स्थान अंगीकार करनेसे और यह दश नाम होतेहैं अर्थात् दशनाम कहे जाते हैं माहेन्द्री, वैश्वानरी, याम्या, नैर्ऋती, वारुणी, वायव्या, कौबेरी, ऐशानी, ब्राह्मी व नागी यह दिशाका वर्णन समाप्त हुवा ।

इति दिग्द्रव्यम् ।

आत्मत्वके (आत्माके सामान्य विशेष गुण वा धर्मके) सम्बन्धसे आत्मा द्रव्य है । उसके सूक्ष्म होनेसे प्रत्यक्ष न होनेमें बसूला आदि करणोंका कर्तासे प्रयोजित होना देखनेसे शब्द आदि विषयोंका ज्ञान श्रोत्रआदि द्वारा होनेसे श्रोत्र (कर्ण) आदिकरण रूप अनुमित होनेसे श्रोत्र आदि करणोंका प्रयोजक कर्ता आत्माके होनेका ज्ञान होताहै और शब्दआदिकोंमें ज्ञान होनेसे ज्ञानका साधक आत्मा अनुमान किया जाता है शरीर, इंद्रिय व मनके ज्ञानरहित होनेसे इनके प्रयोजक वा साधक होनेका ज्ञान नहीं होता क्योंकि घट आदिके समान शरीर भूतका कार्य होनेसे चेतनता (ज्ञान) शरीरका गुण नहीं है व मरणमें शरीरमें चेतनता संभव न हो-

नेसेभी ज्ञान शरीरका गुण नहीं है । इन्द्रिय कारणरूप है इन्द्रियोंके नष्ट हो जानेपर और जब इन्द्रियोंके विषय इन्द्रियोंके समीप नहीं हैं तबभी इन्द्रियोंके विषयोंका स्मरण होनेसे इन्द्रियोंका गुणभी ज्ञान नहीं है । अन्यकरणकी अपेक्षा करनेवाला होनेमें युगपत् ज्ञान (अनेकका एक साथ ज्ञान होना) न होने व फिर स्मृति होनेका प्रत्यय होनेसे व मनके आपभी करणरूप होनेसे मनकाभी गुण ज्ञान नहीं है । शेष रहा (बाकी रहा) आत्मा उसीका कार्य ज्ञान है तिससे (ज्ञानसे) आत्मा जाना जाता है । जैसे रथके कर्मसे सारथीका ज्ञान होता है ऐसेही शरीरसमवायिनी (सम्बंधवाली) हित अहित प्राप्ति व परिहार (त्याग) के योग्य प्रवृत्ति व निवृत्तियोंके द्वारा प्रयत्नवान शरीरके अधिष्ठाता (आत्मा) का अनुमान किया जाता है । प्राण आदिसे भी आत्माका अनुमान किया जाता है कैसे प्राण आदिसे आत्माका अनुमान होता है इसका विवरण करते हैं। शरीरमें जो वायु (प्राण अपानरूप वायु) हैं उनमें विकृतकर्म (विकारको प्राप्त कर्म अर्थात् साधारण वायुके तिरछे चलनेके विपरीत शरीरमें बाहर भीतर नीचे ऊपर जाने आनेका कर्म) देखने वा जाननेसे धौंकनीसे धौंकनेवालेके समान आत्माके प्रयत्नवान् होनेका अनुमान होता है । नियत निमेष (पलक लगने) व उन्मेष (पलक खुलने) के कर्मसे दारुयंत्र (कठपुतली) के प्रयोग करनेवालेके समान व देहकी वृद्धि व घावसे भग्न (घायल) शरीरके घावोंके भरनेसे घरके संवारनेमें घरके स्वामीके समान इन्द्रियके सम्बंधका निमित्त रूप मनके कर्मसे अमित विषयका ग्राहक (ग्रहण करनेवाला) घरके कोणमें बैठे हुये पेलक (एक प्रकारका गेंद) के प्रेरण करनेवाले बालकके समान नेत्रके विषयके देखनेके अनन्तर (पश्चात्) रसकी अनुवृत्तिके क्रमसे रसना (जिह्वा) में विकार होना प्रत्यक्ष होनेसे अनेक झरोखोंके अन्तर्गत (मध्यमें) बैठाहुवा भीतर बाहर दोनोंके देखनेवालेके समान कोई पुरुष चेतन

है यह जाना जाता है । और सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न आदि गुणोंसे कोई गुणी होनेका अनुमान होता है । और अहंकारसे(शरीर व इन्द्रियोंके साथ) एकवाक्यता न होनेसे व्याप्यवृत्ति न होनेसे द्रव्यके (शरीर इन्द्रिय द्रव्यके) रहनेतक न रहनेसे बाह्यइन्द्रियोंसे प्रत्यक्ष न होनेसे तथा मैं शब्दहीसे पृथिवीआदि शब्दसे भेद होनेसे यह (सुखआदि) शरीर व इन्द्रियोंके विशेष गुण नहीं हैं । बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, संस्कार, संख्या-परिमाण, पृथक्त्व, संयोग व विभाग यह उसके (सुख आदि गुण-वान, आत्माके) गुण हैं । आत्माके लिंग होनेके अधिकारमें बुद्धि आदि प्रयत्नपर्य्यन्त सिद्धहै अर्थात् सूत्रकारके वचनसे जैसा अध्याय ३ आह्निक २ सूत्र ४ में कहा है प्रयत्नपर्यन्त आत्माके लिङ्ग होना सिद्ध है अन्य आत्माके धर्म व अधर्म गुण अन्य आत्मामें कारण न होनेके वचनसे (सूत्रकारके वचनसे ६ । १ । ५) अर्थात् जिस आत्माके धर्म अधर्म होते हैं उसीको फल प्राप्त होनेके कारण होते हैं इससे धर्म अधर्मभी आत्माके गुण हैं । स्मृति उत्पत्तिमें संस्कार होनेका सूत्रकारके वचनसे प्रमाण होनेसे अर्थात् आत्मा व मनके संयोगविशेषसे व संस्कारसे स्मृति होती है यह सूत्रकारके वर्णन करनेसे (९ । २ । ६) स्मृति उत्पन्न होनेमें आत्मामें संस्कार कारण होनेसे संस्कारभी आत्माका गुण है । व्यवस्थासे आत्मा नाना अर्थात् अनेक है इस वचनसे (इस सूत्रकारके वचनसे ३ । २। २०) संख्या व इसीसे पृथक्त्व गुण आत्मामें होना सिद्ध होता है वा सिद्ध है । विभु होनेसे आकाश महान है तैसेही आत्मा है (७ । १ । २२) इस सूत्रकारके वचनसे आत्मा महान (महत्परिमाण-वाला) है । सन्निकर्षसे उत्पन्न होनेसे सुखआदिकोंका संयोग व उसके विनाशक होनेसे विभाग होता है ।

इति आत्मद्रव्यम् ।

मनस्त्वके (मनके सामान्य विशेष धर्म होनेके) सम्बंधसे मन द्रव्य है। आत्मा व इन्द्रियों (बाह्येन्द्रियों)के सांनिध्य(समीपता) होनेपरभी ज्ञान सुख आदिकोंकी उत्पत्ति न होना प्रत्यक्ष होनेसे वा जाननेसे और कर्णआदिके व्यापार न होनेमें भी स्मृतिकी उत्पत्ति देखनेसे करणान्तर (बाह्य इन्द्रियोंसे भिन्नकरण) होना अनुमान किया जाता है व बाह्य इन्द्रियोंसे ग्रहण नहीं कियेगये सुख आदिकोंका कोई अन्य (मनसे भिन्न) ग्राहक न होनेसेभी कोई अन्य करण होना अनुमान किया जाता है। संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व व संस्कार उसके गुण हैं। एक साथ अनेक प्रयत्न व अनेक ज्ञान न होनेके वचनसे अर्थात् एकसाथ अनेक प्रयत्न व ज्ञान न होनेसे एक है (३ । २ । ३) ऐसा सूत्रकारने कहा है सूत्रकारके इस वचनसे प्रतिशरीरमें एक होना (मनका एकहोना) सिद्ध होता है और इसीसे पृथक् होना भी सिद्ध होता है। उसके (ज्ञानके) न होनेके वचनसे अर्थात् आत्मा, इन्द्रिय व अर्थके सन्निकर्षमें भी ज्ञानका होना व न होना भी मनका लिंग है ऐसा सूत्रकारने कहाहै (३ । २ । १) इससे मनका अणु परिमाण है तात्पर्य ज्ञान होने व न होनेका हेतु यह है कि जो मन विभु (व्यापक) होता तो सब इन्द्रियोंका सन्निकर्ष होनेसे इन्द्रियोंका ज्ञान उत्पन्न होने व बने रहनेसे ज्ञानका अभाव (न होना) संभव न होता। पूर्वदेहके त्याग करने व अन्य देहमें प्रवेश करनेके वचनसे (सूत्रकारके वचनसे ५ । २ । १७) मनमें, संयोग, विभाग, गुण हैं। व मूर्त होनेसे परत्व, अपरत्व व संस्कारभी मनके गुण हैं। स्पर्शरहित होनेसे मन द्रव्यका आरंभक नहीं होता क्रियावान् होनेसे मूर्त्त है। साधारण विग्रहवान् होनेसे आपसे साधारण (ग्रहण वा आग्रह शक्तिवान् न होनेके) प्रसंगसे ज्ञानरहित है। करणरूपहोनेसे आत्मपरके अर्थ है। गुणवान् होनेसे द्रव्य है। प्रयत्न व अदृष्ट मूल

वा कारणवशसे मनमें आशु सञ्चारित्व (अति वेगसे चलनेवाला होना) गुण है ।

इति द्रव्यपदार्थः ।

गुणानां व्याख्यानम् ।

सब रूप आदि गुण अपने अपने सामान्य विशेष धर्मसहित द्रव्यमें आश्रित क्रियारहित व गुणरहित होते हैं रूप, रस, गंध, स्पर्श, परत्व, अपरत्व, गुरुत्व (गुरुआई), द्रवत्व, (बहना), स्नेह व वेग ये मूर्त द्रव्योंके गुण हैं । बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, भावना व शब्द यह अमूर्त द्रव्योंके गुण हैं । संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग व विभाग यह दोनोंके गुण हैं । संयोग, विभाग, द्वित्व, पृथक्त्व आदि अनेकमें होते हैं शेष (बाकी रहे) एकही एकमें होते हैं । रूप, रस, गंध, स्पर्श, स्नेह, सांसिद्धिक द्रवत्व, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, भावना, शब्द वैशेषिक गुण हैं अर्थात् द्रव्यके भेद जनानेवाले विशेष गुण हैं । संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, गुरुत्व, नैमित्तिक द्रवत्व व वेग ये सामान्य गुण हैं । शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध बाह्य इन्द्रियोंमेंसे एक एक इन्द्रियसे एक एक ग्राह्य हैं (जानने योग्य हैं) संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, द्रवत्व, स्नेह, वेग दो इन्द्रियोंसे ग्राह्य हैं । बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष व प्रयत्न अन्तःकरण-ग्राह्य हैं (मनसे जानने योग्य हैं) गुरुत्व, धर्म, अधर्म, भावना यह अतीन्द्रिय हैं (बाह्य इन्द्रियोंसे ग्राह्य नहीं हैं) अपाकज (जो पकनेसे उत्पन्न न हो वह) रूप, रस, गंध, स्पर्श, परिमाण, एकत्व, गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेह व वेग कारणगुणपूर्वक होते हैं (कारणगुणसे उत्पन्न होतेहैं) बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, भावना, शब्द कारणगुणपूर्वक नहीं होते । बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, भावना, शब्द, तुला, परिमाण, उत्तरसंयोग, नैमित्तिक द्रवत्व,

परत्व, अपरत्व व पाकजगुण, संयोगसे उत्पन्न होतेहैं । संयोग विभाग व वेग कर्मसे उत्पन्न होतेहैं। शब्द व शब्दके उत्तर (पश्चात्) विभाग, विभागसे उत्पन्न होतेहैं। परत्व, अपरत्व, द्वित्व (दो होना) द्विपृथक्त्व (दो पृथक् होना) आदि बुद्धि अपेक्षासे जाने जाते हैं अर्थात् उनका ज्ञान बुद्धिके अधीन है। रूप, रस, गंध, उष्णतारहित स्पर्श (जो स्पर्शमें गरमी न हो ऐसा स्पर्श), शब्द, परिमाण, एकत्व, एक पृथक्त्व, स्नेह यह समान जातिके उत्पन्न करनेवाले हैं। सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न यह असमान जातिके अर्थात् विजातीयके उत्पन्न करनेवाले हैं। संयोग, विभाग, संख्या, गुरुत्व, द्रवत्व, उष्ण-स्पर्श (गरम स्पर्श), ज्ञानधर्म, अधर्म व संस्कार समान व असमान दोनों जातिवाले पदार्थोंके उत्पन्न करनेवाले हैं। बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, भावना, शब्द स्वाश्रय समवेत अर्थात् जो अपने आश्रयद्रव्यमें समवायसम्बधको प्राप्त हैं उनको उत्पन्न करतेहैं। रूप, रस, गंध, स्पर्श, परिमाण, स्नेह, प्रयत्न अपने आश्रयसे भिन्नमें पदार्थ आरंभक होतेहैं। संयोग, विभाग, संख्या, एक, पृथक्त्व, गुरुत्व, द्रवत्व, वेग, धर्म, अधर्म दोनोंमें (अपने आश्रय पर आश्रयमें) आरंभक (उत्पन्न करनेवाले) होतेहैं। गुरुत्व, द्रवत्व, वेग, प्रयत्न, धर्म, अधर्म व संयोग विशेषक्रियाके हेतु होतेहैं अर्थात् इनसे क्रिया होतीहै। रूप, रस, गंध, उष्णता रहित स्पर्श, संख्या, परिमाण, एक, पृथक्त्व, स्नेह, शब्द, यह असमवायिकारण होतेहैं। बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म व भावना यह निमित्तकारण होतेहैं । संयोग, विभाग, उष्णस्पर्श, गुरुत्व, द्रवत्व, वेग यह समवायि व निमित्त दोनों कारण होतेहैं। परत्व, अपरत्व, द्वित्व, द्विपृथक्त्व (दो भिन्न होना) आदि कारण नहीं होते संयोग शब्द व आत्माके गुण एक देशमें होते हैं। शेष (बाकी रहे) आश्रयव्यापी होतेहैं (अपने सब आश्रयमें व्यापक होतेहैं)। अपाकज (विना

पकनेके उत्पन्न हुये गुण) रूप, रस, गंध, स्पर्श, परिमाण, एकत्व, एक पृथक्त्व, गुरुत्व, सांसिद्धिक द्रवत्व (स्वाभाविक सदा सिद्ध द्रवत्व), स्नेहद्रव्यके बने रहनेतक रहतेहैं (द्रव्यके नष्ट होनेहीमें नष्ट होते हैं अन्यथा नहीं) शेष (बाकी रहे गुण) द्रव्य बने रहने परभी नाशको प्राप्त होजाते हैं ।

रूपआदि सब गुणोंमेंसे प्रत्येकमें अपर सामान्यके सम्बंध होनेसे उनके पृथक् २ रूप आदि नाम कहे जातेहैं उनमेंसे प्रथम रूप गुण वह है जो चक्षुर्ग्राह्य है पृथिवी जल व अग्निमें होताहै । द्रव्य आदिका ज्ञापक (जनानेवाला) नेत्रोंको द्रव्य ज्ञान होनेमें सहायक व शुक्ल आदि भेदसे अनेक प्रकारका होता है । जल आदि परमाणुओंमें रूप नित्य है । पृथ्वीके परमाणुओंमें अग्निसंयोगसे नष्ट होजाता है अन्य प्रकारका होजाता है इससे नित्य नहीं है । सब कार्योंमें (कार्यद्रव्योंमें) कारणगुणपूर्वक होताहै । आश्रयके नाश होनेहीपर नष्ट होताहै । रस रसनइन्द्रिय (जिह्वा) से ग्राह्य है । पृथिवी व जलमें होता है । जीवन पुष्टि बल व आरोग्यका निमित्तकारण है रसनसहकारी है अर्थात् रससम्बंधी प्रत्यक्ष वा स्वादु जाननेमें जिह्वाका सहकारी है मधुर (मीठा), अम्ल (खट्टा), लवण, कटु (कडुवा), तिक्त (चरपरा), कषाय (कसैला) यह उसके भेद हैं । रसकेभी नित्य व अनित्य होनेका सिद्धान्त रूपके समान है । गंध, घ्राण (नासिका) इन्द्रियग्राह्य है पृथिवीमें होता है । घ्राण इन्द्रियका सहकारी है सुगंध व दुर्गंध दो प्रकारका भेद है इसका नित्य व अनित्य होना पूर्वके समान व्याख्यात समझना चाहिये स्पर्श त्वचा (खाल) इन्द्रियग्राह्य है (त्वचा इन्द्रियद्वारा जाना जाता है) पृथिवी, जल, तेज व वायुमें होताहै । त्वचइन्द्रियका सहकारी है (त्वचासे द्रव्य प्रत्यक्ष होनेमें सहकारी होता है) रूपाद्युविधायी है (जिससे रूप होताहै उसमें स्पर्शभी होता है) शीत, उष्ण और ऐसा जो न शीत हो न

उष्ण हो यह तीन स्पर्शके भेद हैं अर्थात् तीन प्रकारका स्पर्श होता है इसकाभी नित्य अनित्य होना पूर्वके समान जानना चाहिये॥

पृथिवीके परमाणुओंमें पाकज (पकनेसे उत्पन्न) रूप आदिकोंकी उत्पत्तिका विधान यह है कि अग्निके साथ सम्बंधको प्राप्त घट आदि कच्चे द्रव्यका अग्निसे अभिघात वा प्रेरण होनेसे उनके आरंभक अणुओंमें कर्म उत्पन्न होते हैं उनसे विभाग होते हैं विभागोंसे संयोगोंका नाश होता है संयोगोंके नाशसे कार्य द्रव्य नाशको प्राप्त होता है उसके नष्ट होनेपर उष्णताकी अपेक्षा[१] करनेवाले वा रखनेवाले परमाणुओं व अग्निके

---

१ उष्णताकी अपेक्षा अर्थात् आकांक्षा वा आवश्यकता रखनेवाला संयोग कहनेका अभिप्राय यह है कि जिस संयोगसे श्यामरूप आदिका विनाश होताहै उसमें उष्णता होनेकी आवश्यकता है इससे वह उसकी आवश्यकता रखता है क्योंकि जो उष्णता न हो तो उक्त रूप आदिका विनाश न होसकै इससे संयोगमें प्राप्त उष्णता जो है उसकी आवश्यकता रखनेवाला जो संयोग है उससे नाश होता है ऐसेही जहां जहां अपेक्षा रखनेवाला आगे इस ग्रन्थमें वर्णन किया है उसका आशय ऐसाही समझना चाहिये कि होनेकी आवश्यकता रखनेवाला है रखनेवाला कहनेका तात्पर्य यह है कि उसके होनेकी उसमें आवश्यकताही है अथवा अपेक्षा शब्द अप उपसर्ग व ईक्ष धातुसे बनता है अप उपसर्गके योगसे ईक्ष धातुसे बना अपेक्षा शब्द आकांक्षा करनेवाले वा अवधि करनेवालेका वाचक होता है इससे अवधि करने वा अवधि करनेके भावसे यह अर्थ होता है कि उष्णता समयके अवधि वाला जो संयोग है उससे श्यामरूप आदिका नाश होता है क्योंकि अग्निका साधारण संयोगभी घटके साथ हो उष्णता विशेष न होतो श्यामरूप आदिका विनाश नहीं होता अथवा ईक्ष धातुका अर्थ कोई आचार्य अंकन अर्थात् लक्षणका ग्रहण करते हैं इससे औष्ण्य (गरमी) लक्षणसंयुक्त उक्त संयोग ग्राह्य है।अथवा अपउपसर्गका अर्थ पृथक् भाव ईक्ष व धातुका अर्थ दर्शन अर्थात् देखना, ज्ञान व विचारका है इससे विशेष भावसे विचारने व जाननेवाले वा विशेष ज्ञान वा विचारका अर्थ अपेक्षा शब्दका होता है इन अर्थोंमेंसे जो अर्थ जहां अच्छा घटितहो वह अर्थ वहां अपेक्षाशब्दका ग्रहण करना चाहिये।

संयोगसे श्याम आदि (रूप आदि) का विनाश होता है। फिर उष्णताकी अपेक्षा रखनेवाले अन्य संयोगसे पाकज (पकनेसे उत्पन्न गुण) उत्पन्न होते हैं। उसके पश्चात् भोगियोंके प्राप्त अदृष्टकी अपेक्षा करने वा रखनेवाले आतमाके गुण संयोगसे उत्पन्न पाकज (पकेहुये) अणुओंमें कर्म उत्पन्न होनेमें उनके परस्पर संयोगसे द्व्यणुक आदि क्रमसे कार्यद्रव्य उत्पन्न होता है । उसमें कारण गुणोंके क्रमसे रूप आदिकी उत्पत्ति होती है । और वर्तमान-कार्यके सब अवयवोंमें भीतर व बाहर अग्निसे व्याप्ति न होनेसे कार्यद्रव्यमें रूपआदिकोंका विनाश व उनकी उत्पत्ति होना संभव नहीं होता व कार्यद्रव्यके विनाशसे अणुओंमें प्रवेश होनेसे भी प्राप्ति वा व्याप्ति नहीं होती ॥

जिससे एक आदि गणनका (गिननेका) व्यवहार होता है उसको संख्या कहते हैं। वह एक द्रव्यमें व अनेक द्रव्यमें होती है।

---

१ यद्यपि साधारणमें सबको ऐसा होना ज्ञात न हो वा नहीं होता परंतु वास्तवमें जैसे जलके मिलनेमें मिट्टी आर्द्र (गीली) होजाती है ऐसे ही अग्निकी उष्णता (गरमी) के संयोग होनेमें सूखी मिट्टी चांदी, रांगा आदि धातुओंके समान पिघलकर पानी मिली हुयेके समान गीली हो जाती है इसीसे सूखी ईटें जो आँवाँमें पकाई जाती हैं कभी कभी कई एकमें मिल जाती है एक पिण्ड बन्ध जाताहै और कभी सुखाये हुये कच्चे घट जब आँवाँमें पकानेको रक्खे जाते हैं तब उनके मुख सीधे व गोले होते हैं परन्तु पकनेपर जब आँवाँसे निकाले जाते हैं तब उनमेंसे किसी किसीके मुख आदिमें टेढाई होजाती है इससे अग्निसंयोगमें उष्णताविशे-षसे ऐसा विकारविशेष प्रत्यक्ष होनेसे अणुओंके संयोगमें भेद वा विकार का होना व कार्यान्तर होना अनुमानसे सिद्ध होताहै और जैसे मनुष्य आदिके शरीर आदिमें साधारणमें वही शरीर होनेका प्रत्यय होता है परन्तु सूक्ष्मदृष्टि व विचारसे अन्य अन्य दिनोंमें अन्य अन्य भक्षण व पान कियेहुये पदार्थोंसे उत्पन्न नये नये रस व धातु होने व पूर्वके मलमूत्रद्वारा निकल जानेसे क्षय होनेसे नित्य भेद होना सिद्ध होता है वहां शरीर व परमाणु सदा नहीं रहते ऐसेही घट आदिमें पाकज गुण होने व पूर्वसंयोग नाश होने व अन्य होनेमें कार्यान्तर होना समझना चाहिये ।

जो एक द्रव्यवाली है वह जल आदि व परमाणुरूप आदिके समान नित्य व अनित्य दोनों होती हैं अनेक द्रव्यवाली द्वित्व आदि सम्बंधी परार्ध (प्रलय) पर्य्यन्त रहती है । अनेक विषय बुद्धिसहित जिन जिनमें एक होनेका प्रत्यय होता है उनसे उसकी (द्वित्वरूप आदि संज्ञाकी) सिद्धि होती है अपेक्षाबुद्धिके नाशसे उसका नाश होता है । कैसे नाश होता है इसका निदर्शन यह है जैसे जब बोध करनेवाले (जाननेवाले) के नेत्रके साथ समान असमानजातीय दो द्रव्योंका सन्निकर्ष होता है उस सन्निकर्ष (व्यवधानरहित संयोग) होनेमें १ नेत्रसे संयुक्त द्रव्योंमें समवेत (समवायसम्बंधको प्राप्त) जो एकत्वकी दो संख्या हैं उनमें समवेत एकत्व सामान्य (एकत्वमें निष्ठ एकत्वरूप अपरसामान्य) है उसके ज्ञान (निर्विकल्पात्मक ज्ञान) की उत्पत्ति होनेमें २ एकत्व, सामान्य व सम्बंध व उनके ज्ञानोंसे एक व गुणमें अनेक विषयवाली एक बुद्धि उत्पन्न होती है अर्थात् एकत्व सामान्यविशिष्ट एकत्वगुणसमूहकी आश्रयरूप एक बुद्धि उत्पन्न होती है ३ तब उस बुद्धिकी अपेक्षाकरके दो एकत्वोंसे अपने अपने आश्रयद्रव्योंमें द्वित्व उत्पन्न होता है ४ उससे फिर उसमें द्वित्वसामान्यज्ञान (द्वित्वसामान्यविषयक विशेषणज्ञान) उत्पन्न होता है उस द्वित्वसामान्यज्ञानसे अपेक्षाबुद्धिके नाश होनेकी अवस्था होती है। द्वित्वके सामान्य व उसके ज्ञान व उसके सम्बंधोंसे द्वित्व गुणबुद्धिकी उत्पद्यमानता (उत्पन्न होनेकी अवस्था) यह एक काल अर्थात् एक क्षण है ५ वही अब अपेक्षाबुद्धिके विनाशसे द्वित्व गुणके विनाश होनेकी अवस्था होती है । द्वित्वगुणकी बुद्धि (ज्ञान) से सामान्यबुद्धिकी विनश्यत्ता (विनाश होनेकी अवस्था) होती है । द्वित्वगुण व उसके ज्ञान: व उसके सम्बंधोंसे यह दो द्रव्य हैं ऐसा दो द्रव्योंका ज्ञान उत्पन्न होता है यह एक काल (क्षण) है अर्थात् पूर्व क्षणसे उत्तर भिन्न क्षण है ६ उसके पश्चात् यह दो द्रव्य

हैं इस ज्ञानकी उत्पत्तिमें द्वित्वका नाश होता है । द्रव्यज्ञानके संस्कारकी उत्पद्यमानता व गुण बुद्धिकी विनश्यत्ता होती है व सामान्यबुद्धिका विनाश होता है यह एक काल (क्षण) है ७ उसके पश्चात् द्रव्यके ज्ञानसे द्वित्वगुण बुद्धिका नाश होता है ८ क्षणान्तरमें (अन्यक्षणमें) संस्कारज्ञानसे द्रव्य बुद्धि (ज्ञान) काभी नाश होता है । ऐसे ही त्रित्व आदि (तीन होना आदि) अर्थात् तीन आदि संख्याओंके होनेको व्याख्यात समझना चाहिये कि अनेक विषय बुद्धिसहित एकत्वोंसे सिद्धि व अपेक्षाबुद्धिके नाशसे नाश होता है ॥

कहीं आश्रयके विनाशसे विनाश अर्थात् नाश होता है इसका निदर्शन यह है जब एकत्वके आधार द्रव्यके अवयवमें कर्म उत्पन्न होता है तब एकत्वका सामान्यज्ञान उत्पन्न होता है १ कर्मसे अन्य अवयवसे विभाग होता है अपेक्षाबुद्धिकी उत्पत्ति होती है २ उससे उसी कालमें विभागसे संयोगका नाश होता है । उसी कालमें द्वित्व (दोहोना) उत्पन्न होता है ३ संयोगके नाश होनेसे द्रव्यका नाश होता है व सामान्यबुद्धिकी उत्पत्ति होती है ४ उससे उसके पश्चात् जिसकालमें सामान्यबुद्धिसे अपेक्षाबुद्धिका नाश होता है उसी कालमें आश्रयके विनाशसे द्वित्वका नाश होता है यह विधान वध्य (मारने-योग्य) व घातक (मारनेवाला) के पक्षमें यथार्थघटित होताहै तेज व अंधकारके समान साथ न रहनेवाले पदार्थोंमें विरोध होनेमें दो द्रव्यके ज्ञानकी उत्पत्ति नहीं होसकती अर्थात् गुणबुद्धि होनेके कालमें अपेक्षाबुद्धिके विनाशसे द्वित्वके नाश होनेमें उसके (द्वित्वके) अपेक्षा-युक्त जो यह ज्ञान होता है कि यह दो द्रव्य हैं ऐसे ज्ञानके अभाव होनेका प्रसंग होता है अर्थात् ऐसा ज्ञान नहीं होता । यदि लैंगिक (लिंग वा चिह्नसे उत्पन्न ज्ञान) के समान ज्ञानमात्रसे होना माना जाय कि जैसे नहीं हुआ हुएका लिंग है यह कहा है इसमें लिंगके अभा-वमें भी ज्ञानमात्रसे अनुमान होता है अर्थात् विरोधी लिंगके उदाह-

रणमें स्वरूपसे न हुए वर्षासे हुए वायु व मेघोंके संयोगका अनुमान होता है तथा गुणके नाश होनेमें अर्थात् द्वित्व गुणके न रहनेमेंभी गुणके ज्ञानमात्रसे द्रव्यका प्रत्यय (बोध वा ज्ञान) होगा तो विशेष्यके ज्ञान होनेसे युक्त नहीं है क्योंकि विशेष्यज्ञान (विशेषणके योग्य वा विशिष्टका ज्ञान) विना विशेषणके सम्बन्धसारूप्यसे (लैंगिक ज्ञानके समानस्वरूपसे) नहीं होसकता जैसा कि सूत्रकारने कहा है कि समवायीकी शुक्लता व शुक्लताकी बुद्धिसे (शुक्लताके ज्ञानसे) शुक्ल द्रव्यका ज्ञान होता है विशिष्ट व कार्यरूप द्रव्यमें यह दोनों (विशेषणरूप शुक्लता व शुक्लताकी बुद्धि) कार्य व कारणरूप होती है और लिंगज्ञान भेदरहित उत्पन्न नहीं होता साध्य व साधन भेदसंयुक्तही होता है तिससे ऐसा दृष्टान्त विषम उपन्यास (विरुद्धस्थापन) है । शीघ्र उत्पन्न होनेसे भी दृष्टान्त यथार्थ नहीं है जैसे शब्दवान् आकाश है इसमें तीन (शब्द सम्बन्ध व आकाश) लिंग ज्ञान उत्पन्न होते हैं ऐसेही द्वित्वज्ञानकी उत्पत्ति होती है यह दोषरहित यथार्थ उदाहरण है । जो यह कहा जाय कि वध्य व घातक पक्षमेंभी समान दोषहै और माना जाय कि वध्य व घातक पक्षमें द्रव्यके ज्ञानकी उत्पत्ति होनेका प्रसंग न होगा, कैसे न होगा द्वित्वसामान्यबुद्धि होनेके कालमें संस्कारसे अपेक्षाबुद्धिके नाशसे न होगा तो उत्तर यहहै कि समूहज्ञानही (द्रव्यसमवेतताके साथ गुणका ज्ञान वा विशिष्टज्ञानही) संस्कारका हेतु वा कारण होता है आलोचनज्ञान (गुणज्ञानमात्र) नहीं होता इससे दोष नहीं । जो यह माना जाय कि वध्य व घातकके विरोधमें अनेक ज्ञानोंका एक साथ होनेका प्रसंग होगा तो यह यथार्थ नहीं है क्योंकि एक साथ उत्पत्ति व नाशको नहीं प्राप्त होते हुए दोकी एक साथ स्थितिका (दोका एक साथ रहना) प्रतिषेध (निषेध) किया गया है । अर्थात् एक साथ अनेक ज्ञानके न होनेके वचनसे (सूत्रकारके वचनसे) प्रतिषेध किया गया है इससे वध्य व

घातकके विरोधमें न दो ज्ञानोंकी एक साथ उत्पत्ति है और न दो विनाशको न प्राप्त होतेहुयोंकी स्थिति है ।

इति संख्यावर्णनम् ।

मानके व्यवहारके कारणको परिमाण कहते हैं वह अणु, महत्, ह्रस्व व दीर्घ भेदसे चार प्रकारका होता है उनमेंसे (अणुआदि चारमेंसे) महत् (बडा) दोविध (प्रकार) का होता है नित्य व अनित्य आकाश, काल, दिशा, आत्मामें परम. महत्त्व (महत्परिमाण होना) नित्य है त्र्यणुक आदिमें अनित्य है । ऐसेही अणुभी दो प्रकारका है परमाणु व मनके परिमाणमें जिसको परिमण्डल कहते हैं नित्य है व द्व्यणुक मात्रमें अनित्य है । कुवल (वेर) आमलक (आंवला) बिल्व (बेल) आदिमें यद्यपि यह महत्परिमाणवाले हैं तथापि दूसरेकी अपेक्षा अधिक होनेके अभावसे अर्थात् न्यून होनेसे भाक्त (गौण) अणुका व्यवहार होताहै दीर्घत्व व ह्रस्वत्व उत्पाद्यमें (उत्पन्न करने योग्य अनित्यपदार्थोंमें) महत्त्व व अणुत्वके साथ एक पदार्थमें समवेत (समवाय सम्बन्धयुक्त) होते हैं । समित् (जलानेकी लकडी) इक्षु (ईष वा ऊष) व बांस आदिमें यद्यपि यह साधारण दीर्घ है तथापि दूसरेकी अपेक्षा न्यून होनेसे भाक्त (गौण) ह्रस्वका व्यवहार होता है उक्त चारों प्रकारका अनित्य परिमाण संख्या व परिमाणप्रचय (परिमाण बढने) का कारण है । तिसमें (परिमाणमें) ईश्वरबुद्धिकी अपेक्षाकरके (ईश्वरबुद्धि कारणकी अपेक्षापूर्वक) परमाणुओंके द्व्यणुकोंमें बहुत्व संख्या (बहुत होनेकी संख्या) जो उत्पन्न होती है वह परमाणुओंके द्व्यणुकोंसे उत्पन्न त्र्यगुण आदिरूप कार्यद्रव्यमें रूप आदिकी उत्पत्ति होनेके समयमें अर्थात् रूपआदि उत्पन्न होनेके साथही उसी कालमें महत्त्व व दीर्घत्वको करती है । दो व बहुत महत् कारणोंसे उत्पन्न कार्यद्रव्यमें कारणोंके महत्त्वही महत्त्वको उत्पन्न करतेहैं

बहुत्व महत्त्वको नहीं करता यह समानसंख्यावाले कारणोंसे उत्पन्न कार्यमें अतिशय (अधिक होना) देखनेसे विदित होता है। अर्थात् बहुत कारणोंसे उत्पन्न दो कार्योंमेंसे एकमें अतिशय देखनेसे विदित होता है। दो तूल पिण्डोंमें वर्तमान प्रचय (शिथिल संयोग) पिण्डका आरंभक (उत्पन्न करनेवाला) प्रशिथिल संयोगकी अपेक्षा करनेवाला वा अपेक्षासंयुक्त अथवा परस्पर दो पिण्डोंके अवयवोंके संयोगकी अपेक्षा करनेवाला (आवश्यकता रखनेवाला) दो तूलवाले द्रव्यमें महत्त्वको आरंभ करता है। बहुत्व व महत्त्वको आरंभ नहीं करता। यह समान संख्यापरिमाण वालोंसे उत्पन्नमें अतिशय होना देखनेसे विदित होता है द्वित्व-संख्या (दो होनेकी संख्या) दो अणुओंमें वर्त्तमान द्व्यणुकमें अणुत्व आरंभ करती है महत्त्ववान् त्र्यणुक आदिमें कारणोंके बहुत्व समान जातीयप्रचयोंसे दीर्घत्वकी उत्पत्ति होती है त्र्यणुक समान द्व्यणुकमें द्वित्वसंख्यासे ह्रस्वत्वकी उत्पत्ति होती है अब त्र्यणुकके आदिमें वर्त्तमान महत्त्व व दीर्घत्वोंमें परस्पर एक दूसरेसे क्या भेद है और द्व्यणुकमें अणुत्व बहुत्वमें क्या भेद है महत्त्व व ह्रस्वत्वमें परस्पर विशेष है अर्थात् भेद है क्योंकि महत् पदार्थोंमें दीर्घको लावो अर्थात् बडोंमें दीर्घको लावो अथवा दीर्घोंमें महत् (बडे) को लावो ऐसा व्यवहार होता है ऐसेही अणुत्व व ह्रस्वत्वका परस्पर भेद उनके जाननेवालोंको प्रत्यक्ष होता है वा है। यह चार प्रकारके उत्पाद्य अनित्य परिमाण आश्रयके नाश होनेसे नाश होते हैं (नाशको प्राप्त होते हैं) ॥

इति परिमाणम्।

अवधि (मर्यादा) को मानकर जो परिमित वस्तुको ज्ञान धारण करनेके व्यवहारका कारण होता है उसको पृथक्त्व कहते हैं वह एकद्रव्यमें व अनेकद्रव्यमें होता है पृथक्त्वका नित्य अनित्य होना संख्याके समान व्याख्यात समझना चाहिये। इतना

भेद है एकत्वआदिके समान पृथक्त्वआदिका अपर सामान्यभाव संख्यासे विशेषताको प्राप्त होता है यह संख्याके साथही व्यवहार होना प्रत्यक्ष वा ज्ञात होनेसे सिद्ध होता है ॥

इति पृथक्त्वम् ।

संयुक्तद्रव्योंके बोधका जो निमित्त (कारण) है वह संयोग है वा संयोग कहा जाता है और वह द्रव्य गुण व कर्मका हेतु है । द्रव्यके आरंभमें निरपेक्ष (अपेक्षारहित) होता है अर्थात् विना अन्य पदार्थकी अपेक्षा आरंभक होता है अपेक्षासहितों व अपेक्षा रहितोंसे इस वचनसे ऐसा होता है यह सिद्ध होता है परन्तु गुण व कर्मके आरंभमें संयुक्त समवायसे अग्निसे वैशेषिक गुण होता है इस वचनसे (सूत्रकारके वचनसे) अपेक्षा संयुक्त होता है । अब संयोगका क्या लक्षण है कैविध (प्रकार) का होता है यह वर्णन करते हैं । दो अप्राप्त पदार्थोंकी प्राप्ति संयोग है वह तीन प्रकारका होता है अन्यतरकर्मज (अन्यके कर्मसे उत्पन्न) उभय-कर्मज (दोनोंके कर्मसे उत्पन्न) व संयोगज (संयोगसे उत्पन्न) इनमें अन्यतरकर्मज वह है जो क्रियावालेसे क्रियारहितका संयोग होता है जैसे स्थाणु (लकडीके थुम्मा) का संयोग श्येन (बाज) से अर्थात् बाज पक्षीके साथ होता है विभु (व्यापक) द्रव्योंका मूर्त्तद्रव्योंके साथ होता है । विरुद्ध दिशाओंसे आते हुयोंका भिडजाना आदि उभयकर्मज है यथा मल्लों (पहलवानों) का अथवा मेंढोंका भिडना संयोगज वह है जो उत्पन्नमात्रका अथवा बहुत काल उत्पन्न हुये क्रियारहितका कारण संयोगियोंके साथ अकारणोंके साथ कारण व अकारण संयोगपूर्वक कार्य व अकार्यमें प्राप्तसंयोग होता है और वह एकसे दोसे व बहुतोंसे होता है । एकसे प्रथम जैसे तन्तु व वीरण (तृणविशेष) के संयोगसे द्वितन्तुक (दो तन्तुओंका पट) व वीरणका संयोग होता है

अर्थात् उत्पन्नमात्र क्रियारहित द्वितन्तुक (दो तन्तुवाले) पटका कारणरूप तन्तुसंयोगीके साथ और जो कारण नहीं है ऐसे वीरणसे (वीरणके साथ) जो संयोग होता है वह एकसे अर्थात् एक कारणतन्तुका अकारणवीरणके साथके संयोगसे द्वितन्तुक पट-कार्यमें अकार्य वीरणमें होता है (उत्पन्न होता है) ऐसेही और जान लेना चाहिये दोसे जैसे तन्तु व आकाश दोनोंके संयोगसे द्वितन्तुक (दो तन्तुवाले पट) व आकाशका संयोग होता है व बहुतोंसे यथा तन्तुओं व तुरी (पट बिननेका हथियारविशेष) के संयोगोंसे एक पट वँ तुरीका संयोग होता है एकसे दोकी उत्पत्ति कैसी होती है उसका निदर्शन यह है जैसे जब पार्थिव (पृथिवीद्रव्यवाले) व आप्य (जलद्रव्यवाले) दो अणुओंके संयोग होनेमें अन्य पार्थिव अणुके साथ पार्थिवका व अन्य आप्यअणुके साथ आप्यका (जलद्रव्यका) दोनोंके एकसाथ संयोग होते हैं तब दो संयोगोंसे पार्थिव व आप्यके द्व्यणुक एक साथ आरंभकिये जाते (उत्पन्न किये जाते) हैं तिससे जिसकालमें दोनों प्रकारके द्व्यणुकोंमें कारणगुणपूर्वक क्रमसे रूप आदिकोंकी उत्पत्ति होती है उसी कालमें दोनों परस्पर कारण व अकारणमें प्राप्त संयोगसे परस्पर कार्य व अकार्य दोनोंमें प्राप्त संयोग एक साथ (एकवारगी) उत्पन्न होतेहैं क्योंकि कारणसंयोगीहीके साथ कार्य अवश्य संयोगको प्राप्त होता है । इससे पार्थिव द्व्यणुक कारण संयोगीसे कारणसंयोगीके द्वारा आप्य अणुके साथ व आप्य द्व्यणुक पार्थिव अणुके साथ संयोगको प्राप्त होता है अर्थात् संयुक्त होताहै । अब यदि यह शंका हो कि दोनों प्रकारके द्व्यणुकोंका जिनका एक दूसरेके कारणोंमें सम्बंध है उनका परस्पर संबंध कैसे होताहै तो संयोगसे उत्पन्न संयोगोंसे अर्थात् एक दूसरेके कारणोंमें हुये संयोगसे उत्पन्न संयोगोंसे उनका परस्पर सम्बंध है । संयोग उत्पत्तिरहित नहीं होता अर्थात् विना उत्पन्न

हुये नहीं होता । जो संयोग नित्य होता तो जैसे चार प्रकारके परिमाण अनित्य कहकर पारिमाण्डल्य (परमाणुका परिमाण) नित्य है यह पृथक् वर्णन कियाहै ऐसेही सूत्रकार अन्यतरकर्मज (अन्यके कर्मसे उत्पन्न) आदि संयोगोंको कहकर किसी प्रकारका संयोग नित्य पृथक् वर्णन करते परन्तु ऐसा नहीं कहा इससे संयोग विना उत्पन्न हुये नहीं होता यह निश्चयकरना चाहिये । परमाणुओंसे आकाश आदिकोंकी प्रदेशवृत्ति (एक देशमें होना) है यह अन्यतरकर्मज संयोग है । विभु (व्यापक) द्रव्योंका परस्पर संयोग नहीं है क्योंकि उनकी युतसिद्धिका अभाव है अर्थात् उनके सम्बंधरहित वा मेल-रहित होनेकी सिद्धि नहीं होती सम्बंधरहित ही पृथक् पदार्थोंमें सम्बंध (योग) होना संयोग कहाजाता है । उक्त युतसिद्धि दो विधिकी होती है एक दोनों वा दोनोंसे एकका पृथक्गतिमान् होना दूसरे युत आश्रयोंमें (मिलेहुये आश्रयोंमें) आश्रयी होना । विनाश सब संयोगका वह जिस एक द्रव्यमें समवेत (समवायिको प्राप्त) है उससे विभाग होनेसे होता है और कहीं आश्रयके विनाशसे होता है । यथा दो तन्तुओंके संयोग होनेपर अन्यतन्तुके आरंभक अवयवमें कर्म उत्पन्न होता है उससे अन्य अवयवमें विभाग कियाजाता है अर्थात् होता है विभागसे तन्तुके आरंभक (उत्पन्नकरनेवाले) संयोगका नाश होता है संयोगके नाशसे तन्तुका नाश होता है तन्तुके नाशसे उसमें आश्रित अन्य तन्तुके संयोगका नाश होता है ॥

इति संयोगः ।

विभाग विभक्तोंके (विभागको प्राप्त हुये पदार्थोंके) ज्ञानका निमित्त (कारण) है और शब्द व विभागकाभी हेतु (कारण) है । जो प्राप्ति पूर्वमें रही है उसके न रहनेको अर्थात् अप्राप्ति होजानेको विभाग कहते हैं । यह भी अन्यतरकर्मज उभयकर्मज व विभागज तीनप्रकारका होता है । इनमेंसे अन्यतर

कर्मज व उभयकर्मजको (बाजका स्थाणुसे उडजाने व मल्लोंका एक दूसरेको छोडदेनेसे) संयोगमें कहे हुयेके समान समझना चाहिये । रहा विभागज वह दो प्रकारका होता है कारणके विभागसे व कारण व अकारणके विभागसे । कारणके विभागसे विभाग होना यह है कि कार्यमें प्रविष्ट कारणमें उत्पन्न हुवा कर्म जब अन्य अवयवसे विभाग करता है तब आकाश आदिदेशसे नहीं करता और जब आकाशसे विभाग करता है तब अन्य अवयवसे नहीं करता यह निश्चय है इससे अवयवका कर्म अन्य अवयवमात्रसे विभागको आरंभ करता है और विभागसे द्रव्यका आरंभक (उत्पन्नकरनेवाला) संयोगका नाश होता है संयोगके नष्ट होनेमें कारणके अभावसे कार्यका अभाव होता है इससे अवयवीका नाश होता है उससे उसके पश्चात् कारणों (अवयवों) में वर्तमान विभाग कार्यके नाश होनेसे विशिष्ट (विशेषताको प्राप्त) कालकी अपेक्षा करके अर्थात् कार्यके नाश होनेहीके क्षणके अवधिका जो काल है उसकी अपेक्षा करिकै अथवा स्वतंत्र अवयवकी अपेक्षा करिकै कार्यसंयुक्त आकाश आदि देशसे जिसमें क्रिया हुई है ऐसे अवयवके विभागको आरंभ करता है । क्रियाकारणके अभावसे (विभागके कारण क्रियाके अभावसे) उत्तर संयोग उत्पन्न न होनेमें विभागके आरंभ होनेके कालका उपभोग न होने अर्थात् अंत न होनेके प्रसंगसे क्रियारहित अवयवोंके विभागको उत्पन्न नहीं करता और उसी अवयवका कर्म जिससे अन्य अवयवसे विभाग होता है उसके आरंभका काल व्यतीत, होजानेसे आकाशआदि देशसे विभाग नहीं करता है परन्तु प्रदेशान्तरके (अन्यदेशके) संयोगको करता है क्योंकि संयोग (उत्तरसंयोग) न कियेहुये कर्मके कालके व्यतीत होनेके अभावसे कर्मका नाश नहीं हो सक्ता व कर्म नित्य नहीं होता उत्तर संयोगमात्रसे नष्ट होजाता है इससे विभागसे आकाशआदि देशसे विभाग होता है । कारण व अकारणके विभागसे विभाग कैसे होता है उसका

दृष्टान्त यह है जब हाथमें उत्पन्न हुवा कर्म अन्य अवयवसे विभाग न करतेहुये आकाशआदि देशोंसे विभागोंको आरंभ करिकै अन्य प्रदेशोंमें संयोगको आरंभ करता है तब वह कारण व अकारणके विभाग जिस दिशामें कर्मकार्यके अभिमुख होता है उस दिशाकी अपेक्षा करिकै कार्य व अकार्यके विभागोंको आरंभ करते हैं उसके अनन्तर (पश्चात्) कारण व अकारणके संयोग कार्य व अकार्यके संयोगोंको उत्पन्न करते हैं (शंका) यदि कारण-विभागसे अनन्तर कार्यविभागकी उत्पत्ति व कारणसंयोगसे अनन्तर कार्यसंयोगकी उत्पत्ति होती है तो अवयव व अवयवीमें युतसिद्धिदोष (मिलेहुयेकी सिद्धि होनेका दोष) होनेका प्रसङ्ग होगा (उत्तर) दोष नहीं प्राप्तहोता । युतसिद्धिके ज्ञान न होनें वा न समझनेसे ऐसा भ्रम होता है दोनोंका अथवा एकका पृथक् गतिमान होना (पृथक् प्राप्त होना) नित्य द्रव्योंकी युत-सिद्धि है व युत (पृथक् आश्रयोंमें) समवाय (नित्य सम्बंध-विशेष) होना अनित्योंकी युतसिद्धि है यथा त्वच (चर्म वा चमडा) में इन्द्रिय व शरीरका पथक्गतिमान् होना (पृथक् प्राप्त होना) नहीं है युतआश्रयोंमें (मिलेहुये आश्रयोंमें) समवाय है इससे परस्परसे संयोगकी सिद्धि है । अणु व आकाशमें अन्य आश्रय न होनेपरभी अन्यतरके (अणुके) पृथक् गतिमान् होनेसे संयोग व विभाग सिद्धहोते हैं अनित्य तन्तु व पटमें अन्य आश्रय न होनेसे परस्पर संयोग व विभाग होते हैं । दिशा आदिके पृथक्गतिमान् होनेके अभावसे एक दूसरेमें संयोग हो-नेका अभाव है । सब विभागोंका क्षणिक होनेसे व उत्तर संयोग होनेतक संभव होनेसे नाश होता है । संयोगके समान नहीं है । संयुक्त प्रत्ययके समान विभक्तोंके (विभागको प्राप्तहुयोंके) प्रत्ययकी अनुवृत्ति (फिर वही वा वैसाही ज्ञान होना) न होनेसे जिन दो अवयवोंका विभाग होता है उनहीके संयोगसे (वि-

भाग) नाश होता है (नाशको प्राप्त होता है) इससे संयोगतक रहनेकी अवधि होनेसे क्षणिक है ।

कहीं आश्रयके विनाशसे नाशको प्राप्त होताहै जैसे जब द्वितन्तुकका (दोतन्तुवाले द्रव्यं पटका) कारण जो अवयव है उसके अंश (अवयव) में उत्पन्नकर्म अन्य अवयवसे विभाग आरंभ करता है तभी अन्यतन्तुमें कर्म उत्पन्न होता है । विभागसेभी अन्य तन्तुके आरंभक संयोगका नाश होता है और तन्तुके कर्मसे अन्यतन्तुसे विभाग किया जाता है अर्थात् विभाग होता है यह एक काल है २ उसके पश्चात् जिस कालमें विभागसे तन्तुके संयोगका नाश होता है उसी कालमें संयोगके नाशसे तन्तुका नाश होता है ३ उसके नष्ट होनेमें उसमें आश्रित जो अन्य तन्तुसे विभाग है उसका नाश होता है ४ (शंका) जो ऐसा होगा तो कारणके (अन्य तन्तुके) विभाग न होनेसे उत्तर विभाग (तन्तु व आकाशका विभाग) न होनेका प्रसंग होगा और उससें अन्य प्रदेशके संयोगका अभाव होगा । इससे अर्थात् विरोधी गुणके अभावसे वा संभव न होनेसे कर्मका चिरकाल अवस्थायी होना (बहुत कालतक बने रहना) व नित्य द्रव्यमें समवेत (समवाययुक्त) का नित्य होना यह दोष होगा इसका उदाहरण वा निदर्शन यह है कि जब द्व्यणुकके आरंभक परमाणुमें उत्पन्न कर्म अन्य अणुओंसे विभाग करता है तभी अन्य अणुमें कर्म होता है १ उसके पश्चात् जिस कालमें विभागसे द्रव्यके आरंभक संयोगका नाश होता है उसी कालमें अणुके कर्मसे द्व्यणुकके दोनों अणुओंका विभाग होता है २ उसके पश्चात् जिसकालमें विभागसे द्व्यणुकके अणुओंके संयोगका नाश होता है उसी कालमें संयोगके नाश होनेसे द्व्यणुकका नाश होता है ३ उसके नष्टहोनेमें उसमें आश्रित जो द्व्यणुकके अणुका विभाग है उसका नाश होता है ४ उसके पश्चात् विरोधी गुण संभव न होनेसे कर्मका नित्यत्व-

सिद्ध होता है (उत्तर) नित्यत्व नहीं होता तन्तुके अन्य अवयवके विभागसे विभाग होता है इससे दोष नहीं है । आश्रयके विनाशसे दोनों तन्तुओंका विभाग नष्ट हो जाता है तन्तुके एकही अवयवका विभाग नष्ट नहीं होता तिससे अंगुलि व आकाशके विभागसे शरीर व आकाशका विभाग होनेके समान उत्तर विभाग उत्पन्न होताहै । उसके उत्पन्न होनेमें संयोगको करके कर्म नाशको प्राप्त होता है इससे दोष नहीं है अथवा अन्य अंशु (अवयव) में विभाग उत्पन्न होनेके समयमें उसी तन्तुमें कर्म उत्पन्न होता है । उसके पश्चात् अन्य अंशुके विभागसे तन्तुके आरंभक संयोगका नाश होता है और तन्तुके कर्मसे अन्य तन्तुसे विभाग होता है यह एककाल है उसके पश्चात् संयोगके नाशसे तन्तुका नाश होता है ३ उसके नाशसे उसमें आश्रित दोनों विभाग कर्मोंका एकही साथ नाश होता है ४ अथवा तन्तु व वीरण दोनोंके संयोग होनेपर तन्तुके अवयवके अवयवमें व वीरणमें (तृणविशेष जिससे चटाई विनी जाती है उसमें) भी कर्म उत्पन्न होता है १ उसके पश्चात् अवयवके कर्मसे अन्य अवयवसे विभाग होता है व वीरणके कर्मसे तन्तु व वीरणका विभाग होता है २ उसके पश्चात् अन्य अवयवके विभागसे तन्तुका आरंभक संयोग नष्ट होता है और तन्तु व वीरणके विभागसे तन्तु व वीरणके संयोगका नाश होता है ३ उसके पश्चात् तन्तुके आरंभक संयोगके नाशसे तन्तुका नाश होता है और तन्तु व वीरणके संयोगके नाशसे वीरणका उत्तरसंयोग होता है ४ इन दोनोंसे अर्थात् आश्रयके नाश व उत्तर संयोगसे तन्तु व वीरणके विभाग व नाश दोनों होते हैं ॥

इति विभागः ।

पर व अपरके कहने व ज्ञानका जो निमित्त हो उसको परत्व व अपरत्व कहते हैं वह दो प्रकारका होताहै एक जो दिशासे होता है व दूसरा जो कालसे होता है दिशासे हुवा वा दिशा-सम्बन्धी दिशाविशेषके ज्ञानका कारण होता है अर्थात् जनाता है व कालसम्बन्धी अवस्थाभेदको जनाता है। दोमेंसे प्रथम दिशाकृतका अर्थात् दिशासे कियेगये वा हुयेकी उत्पत्तिका वर्णन किया जाता है कैसे होता है इसका उदाहरण यह है यथा एकही दिशामें दो अवस्थित पिण्डोंके संयुक्तसंयोगमें बहुत व अल्प (थोडा) होनेमें एकही देखनेवाला जब सन्निकृष्टको (समीपस्थ पिण्डको) अवधि (मर्य्यादा अर्थात् हद) मानकर देखता है तब उसको परत्वके आधारमें (परत्व जिसमें है उस पिण्ड वा द्रव्यमें) यह इससे विप्रकृष्ट (दूर) है ऐसी बुद्धि उत्पन्न होती है अर्थात् ऐसा ज्ञान होता है उससे उस बुद्धिकी अपेक्षा करके परदिशाके देशके संयोगसे परत्वकी उत्पत्ति होती है और विप्रकृष्ट (दूर द्रव्य) को अवधि मानकर सन्निकृष्टमें सन्निकृष्ट होनेकी बुद्धिकी उत्पत्ति होतीहै उससे सन्निकृष्ट बुद्धिकी अपेक्षाकरके अपरदिशाके देशके संयोगसे अपर-त्वकी उत्पत्ति होती है। कालसे हुये परत्व व अपरत्वकी उत्पत्तिका वर्णन यह है जैसे दिशा व देशके नियमरहित वर्तमानकालमें प्राप्त एक युवा (जवान) जिसके डाढी जमी है अर्थात् निकली है व शरीरका चमडा जिसका कडा है व दूसरा स्थविर (वृद्ध) जिसके चमडेमें सिकुडे पडे हैं व बाल पकगये हैं (सफेद हो गये हैं) इत्यादि लक्षणोंको देखकर दोनोंके समीप होनेमें एकही देखनेवाला जब युवाको अवधि मानकर विचारता है तब स्थविरमें उसकी विप्रकृष्ट होनेकी बुद्धि उत्पन्न होती है अर्थात् अधिक होने वा पहिले होनेका ज्ञान होता है उस ज्ञानकी अपेक्षाकरके परकालके प्रदेशके साथ संयोग होनेसे परत्वकी (परहोनेकी) उत्पत्ति होती है और स्थविर (वृद्ध) को अवधि मानकर युवामें सन्निकृष्ट होनेकी बुद्धि

उत्पन्न होती है उसकी अपेक्षाकरके अपर (पिछले) कालके प्रदेशसे (प्रदेशके साथ) संयोग होनेसे अपरत्वकी उत्पत्ति होती है। और अपेक्षा बुद्धि, संयोग व द्रव्यके नाश होनेसे परत्व अपरत्वका नाश होता है। परत्व अपरत्वमें अपेक्षाबुद्धि निमित्तकारण १ संयोग असमवायिकारण २ द्रव्य समवायि कारण है ३ इनमेंसे प्रथम अपेक्षाबुद्धि निमित्तकारणके नाशसे नाश होनेका निदर्शन यह है कि उत्पन्न हुये परत्वमें १ सामान्य बुद्धि (परत्वका सामान्यज्ञान) उत्पन्न होतीहै तब उससे अपेक्षाबुद्धिके नाश होनेकी अवस्था व सामान्यज्ञान व दोनोंके सम्बन्धोंसे परत्वगुणके बुद्धि (ज्ञान)की उत्पन्न होनेकी अवस्था होनेका एक कालहै अर्थात् यह तीनों एकही कालमें होते हैं उससे (सामान्यबुद्धिसे) अपेक्षाबुद्धिका नाश होता है व गुण बुद्धिकी उत्पत्ति होती है उससे (उसके पश्चात्) अपेक्षाबुद्धिके नाशसे गुणके नाशवान् होनेकी अवस्था, गुणका ज्ञान व दोनोंके सम्बन्धोंसे द्रव्यबुद्धि उत्पन्न होनेकी अवस्था यह एककाल (क्षण) है अर्थात् यह प्रथमकी अपेक्षा द्वितीय क्षणमें होता है उसके पश्चात् तृतीयक्षणमें द्रव्यबुद्धिकी उत्पत्ति होती है और गुणका (परत्वका) नाश होता है ४ ॥ संयोगके नाशसेभी परत्वका नाश होता है कैसे नाश होता है उसका निदर्शन यह है जैसे अपेक्षाबुद्धि होनेके कालहीमें, परत्वके आधारपिण्डमें कर्म उत्पन्न होता है १ उस कर्मसे दिशा व पिण्डका विभाग होता है अपेक्षाबुद्धिसे परत्वकी उत्पत्ति होतीहै यह एककाल (एकक्षण) है अर्थात् दोनोंका होना एकक्षणमें होता है २ उससे सामान्यबुद्धिकी उत्पत्ति होतीहै दिशा व पिण्डके संयोगका नाश होता है ३ उसके पश्चात् जिसकालमें गुणबुद्धि (गुणकी बुद्धि) उत्पन्न होती है उसी कालमें दिशा व पिण्डके संयोगके विनाशसे गुणका (परत्वका) विनाश होता है ४ द्रव्यके नाशसेभी नाशको प्राप्त होता है कैसे

उसका उदाहरण यह है जैसे परत्वके आधारद्रव्यके अवयवमें कर्म उत्पन्न होता है वह जिस कालमें अवयवसे (अन्य अवयवसे) विभाग करताहै उसी कालमें अपेक्षाबुद्धि उत्पन्न होती है २ उस विभागसे जिस कालमें संयोगका नाश होता है उसी कालमें परत्व उत्पन्न होता है ३ उसके पश्चात् संयोगके विनाशसे द्रव्यका विनाश होता है व सामान्यबुद्धिकी उत्पत्ति होती है ४ उसके (द्रव्यके) विनाशसे उसमें आश्रित गुणका विनाश होता है ५ द्रव्य व अपेक्षा-बुद्धि दोनोंके एकसाथ नाश होनेसे भी परत्वका नाश होता है ४ कैसे उदाहरण यह है जैसे जब परत्वके आधार द्रव्यके अवयवमें (परत्व जिसमें है ऐसे द्रव्यके अवयवमें) कर्म उत्पन्न होता है तभी अपेक्षाबुद्धि उत्पन्न होती है ५ और कर्मसे अवयवसे विभाग होता है परत्वकी उत्पत्ति होती है यह एक काल है २ उसके पश्चात् जिसकालमें विभागसे संयोगका नाश होता है उसी कालमें सामान्यबुद्धि उत्पन्न होती है ३ उसके पश्चात् संयोगके नाशसे द्रव्यका नाश होता है व सामान्यबुद्धिसे अपेक्षाबुद्धिका नाश होता है यह एक काल है ४ फिर इसके पश्चात् द्रव्य व अपेक्षा-बुद्धि दोनोंके एकसाथ नाश होनेसे परत्वका नाश होता है ५ समवायिकारण द्रव्य व असमवायिकारण संयोग दोनोंके नाशसे भी परत्वका नाश होता है जैसे जब द्रव्यके अवयवमें कर्म उत्पन्न होता है १ वह अन्य अवयवसे विभाग करता है उसी कालमें (वि-भाग करनेके कालमें) पिण्डमें कर्म व अपेक्षाबुद्धि दोनोंकी एक साथ उत्पत्ति होतीहै २ उसके पश्चात् जिस एककालमें परत्वकी उत्पत्ति होतीहै उसी कालमें विभागसे द्रव्यके आरंभक संयोगका नाश होता है और पिण्डके कर्मसे दिशा व पिण्डका विभाग होता है ३ उसके पश्चात् जिस कालमें सामान्यबुद्धि उत्पन्न होती है उसी कालमें संयोगके विनाशसे पिण्डका विनाश होता है और विभागसे दिशा व पिण्डके संयोगका विनाश होता है ४ उसके

पश्चात् गुण बुद्धि होनेके कालमें पिण्डके संयोगके नाशसे परत्वका नाश होता है ५ असमवायिकारण संयोग व निमित्तकारण अपेक्षाबुद्धि दोनोंके एक साथ नाश होनेसे भी नाश होता है ६ कैसे नाश होता है इसका निदर्शन यह है जैसे जब परत्व उत्पन्न होता है उसी कालमें परत्वके आधारमें कर्म उत्पन्न होता है १ उसके पश्चात् जिस कालमें परत्वकी सामान्यबुद्धि उत्पन्न होतीहै उसी कालमें पिण्डके कर्मसे दिशा व पिण्डका विभाग होता है २ उसके पश्चात् सामान्यबुद्धिसे अपेक्षाबुद्धिका विनाश होता है और विभागसे दिशा व पिण्डके संयोगका नाश होता है यह एक काल (एकक्षण) में होते हैं ३ इसके पश्चात् संयोग अपेक्षाबुद्धिके विनाशसे परत्वका विनाश होता है ४ समवायि, असमवायि व निमित्त तीनों कारणोंके एक साथ नाश होनेसे भी नाश होता है ७ कैसे नाश होता है इसका वर्णन यह है जैसे जब अपेक्षाबुद्धि उत्पन्न होती है तभी पिण्डके अवयवमें कर्म होता है १ उसके पश्चात् जिस कालमें अन्य अवयवसे विभाग किया जाता है वा होता है व परत्वकी उत्पत्ति होतीहै उसी कालमें पिण्डमें कर्म होता है २ उससे विभागसे पिण्डके आरंभक संयोगका नाशहोता है और पिण्डके कर्मसे दिशा व पिण्डका विभाग होता है व सामान्यबुद्धिकी उत्पत्ति होती है यह एक काल है अर्थात् यह सब एक कालमें होते हैं इन सबका एक काल है ३ इसके पश्चात् संयोगके विनाशसे पिण्डका विनाश होता है व विभागसे दिशा व पिण्डके संयोगका नाश होता है व सामान्यज्ञानसे अपेक्षाबुद्धिका नाश होता है ४ इस प्रकारसे एक साथ समवायि, असमवायि व निमित्त तीनों कारणोंके विनाशसे परत्वका विनाश होता है ५ ।

इति परत्वम् ।

बुद्धि, उपलब्धि, ज्ञान व प्रत्यय यह एकही अर्थके वाचक शब्द हैं अर्थात् इन शब्दोंका एकही अर्थ है प्रत्येक अर्थमें नियत होनेसे क

अर्थोंके (पदार्थोंके) अनन्त होनेसे बुद्धि अनेक प्रकारकी होती है परन्तु संक्षेपसे दो प्रकारकी है विद्या दूसरी अविद्या इनमेंसे अविद्याके चार भेद हैं संशय, विपर्यय, स्वप्न व अनध्यवसाय जिनके विशेषधर्म ज्ञात (जाने हुये) हैं ऐसे स्थाणु (लकडीका थुंभा व ठूंठ) व पुरुष दोनोंके सादृश्य (सम होना) मात्र देखनेसे व दोनोंके विशेष धर्मोंके स्मरणसे व विशेषके ज्ञान न होनेसे दोमें से कौन है ऐसा दोनों कोटिमें आलम्बन करनेवाले विचारको संशय कहते हैं वह दो प्रकारका होता है एक अन्तस्संशय दूसरा बहिस्संशय । अन्तस्संशयका निदर्शन यह है यथा कोई ज्योतिषका जाननेवाला चन्द्रग्रहण आदिका होना कहै परन्तु यथार्थज्ञान वा निश्चय न होनेसे उसके मनमें संशय हो कि सत्य होगा अथवा मिथ्या होगा इत्यादि व बहिस्संशय (बाहर देखे हुये पदार्थमें संशय होना) भी दो प्रकारका होता है एक प्रत्यक्षविषयमें दूसरा अप्रत्यक्षविषयमें । अप्रत्यक्षविषयमें संशय होना वह है जो साधारण लिङ्ग (चिह्न) के देखनेसे दोनों कोटिमें विशेष धर्मके स्मरण होनेसे व विशेषधर्मके ज्ञान न होनेसे संशय होता है यथा वनमें विषाण (सींग) मात्र देखनेसे गौ है अथवा गवय (नीलगाव) है यह संशय होता है व प्रत्यक्षविषयमें जैसे स्थाणु व पुरुषके समान उंचाईमात्र देखनेसे वक्र (टेढा) व कोटर (खोह) आदि होनेका विशेषज्ञान न होनेसे स्थाणुत्व (स्थाणु होना) आदि सामान्यही जो विशेषधर्म है अर्थात् अन्य पदार्थोंसे भेद जनानेवाला जो धर्म है उसके प्रकट वा प्रत्यक्ष न होनेमें दोनोंके विशेषधर्मके स्मरण होनेसे दोनोंके विशेषधर्मोंके विचारमें दोनों तरफ खिंचता हुवा आत्माका ज्ञान इस प्रकारसे हिंडोलाके समान चलायमान होता है कि यह स्थाणु है वा पुरुष है इत्यादि । विपर्ययभी प्रत्यक्ष व अनुमान विषयमें होता है प्रथम प्रत्यक्षविषयमें विपर्यय होनेका लक्षण

व उदाहरण वर्णन किया जाता है जिसके इन्द्रियमें कफ पित्त वातका दोष प्राप्त होता है उसको वर्तमान अवस्थामें अयथार्थ देखनेसे इन्द्रियके साथ यथार्थ संयोग न प्राप्त हुये विषयके ज्ञानसे उत्पन्न हुये संस्कारकी अपेक्षासे व आत्मा व मनके संयोगसे व विशेषके ज्ञान न होनेसे अनेक विशेष धर्म जिनके ज्ञान हैं ऐसे दो पदार्थोंका भ्रमरूप ज्ञान अर्थात् जिसमें जो धर्म नहीं है उसमें उसका ज्ञान होना विपर्यय है जैसे गौमें, घोडा है ऐसा ज्ञान होनें आदिमें प्रत्यक्ष न होनेमेंभी प्रत्यक्ष होनेका अभिमान होता है जैसे मेघोंकी घटासे अंधकारको प्राप्त समुद्रके समान अचल आकाश व सुरमाके चूर्ण वा कज्जलके पुंज (ढेर) के समान श्याम रात्रिका अंधकार है यह वा ऐसा ज्ञात होता है । अनुमान विषयमें जैसे भाफ (जलाशयसे उठी हुई भाफ) वा धूल धूमके समान देखकर अग्निका अनुमान होना वा करना गवय (नीलगाव) के सींग मात्र देखनेसे गौका अनुमान होना वेदत्रयी (ऋग्यजुस्साम वेद) के विपरीत नास्तिकोंके ग्रंथोंमें यह श्रेय (कल्याण) करनेवाले हैं ऐसा मिथ्या ज्ञान होना विपर्यय है तथा शरीर इन्द्रिय व मनको आत्मा मानना अनित्य कार्योंको नित्य जानना विना कारण कार्यकी उत्पत्ति जानना वा मानना हितउपदेशमें अहित समझना विपर्यय ज्ञान है । अनध्यवसाय (निश्चय न होना) भी प्रत्यक्ष व अनुमानविषयमें होता है । उनमेंसे प्रथम प्रत्यक्ष विषयमें होनेका वर्णन यह है कि जानेहुये पदाथामें वा न जानेहुये पदार्थोंमें व्यासङ्ग होनेसे अर्थात् सामान्य व विशेषभावसे ज्ञान होने व न होनेके मेलसे अथवा पदार्थके ज्ञान न होनेसे यह क्या है ऐसा ज्ञान होना मात्र अनध्यवसाय है जैसे वाहीकको (जाति भेद है उसको) पनस(कटहर) आदिमें अनध्यवसाय होता है उनमें (कटहर आदिमें) सत्ता (होना) द्रव्यत्व (द्रव्य होना) पृथिवीत्व (पृथिवी होना) वृक्षत्व (वृक्ष होना) रूपवान् होने शाखा आदिकी अपेक्षासे अध्यवसायही (निश्चयही)

है व कटहर होनाभी कटहरोंमें पूर्वमें देखेहुयेके समान वही पदार्थ होना व आमआदिकोंसे भिन्न होना प्रत्यक्षही है केवल उपदेश न होनेसे विशेष नामका निश्चय नहीं होता है । अनुमानविषयमेंभी अनध्यवसाय होता है जैसे किसी नारिकेल द्वीपवासीको सास्ना (गलकम्बल) मात्र देखनेसे यह कौन प्राणी होगा ऐसा अनध्यवसाय होता है। जिसकी सब इन्द्रियाँ शान्त होगई हैं मन लीन होगया है उसको इन्द्रियके द्वारा ज्ञान होनेके समान जो मानस (मन सम्बंधी) अनुभव होता है वह स्वप्नज्ञान है जैसे जब बुद्धिपूर्वक आत्माके शरीरव्यापारसे दिनमें श्रमको प्राप्त प्राणीका मन रात्रिमें विश्रामके लिये अथवा आहारपरिणामके लिये अदृष्टकारणसे हुये प्रयत्नकी अपेक्षासे, अन्तःकरणके सम्बंधसे व मनमें हुये क्रियाओंके प्रबंधसे अन्तरहृदयमें इन्द्रियोंसे रहित आत्माके प्रदेशमें निश्चल स्थिर होता है तब वह प्रलीनमनस्क (प्रलीन मनवाला) कहा जाता है मनके लीन होनेमें उसकी सब इन्द्रियाँ शान्त होजाती हैं उस अवस्थामें प्रवाहरूपसे प्राण व अपानके सन्तानकी प्रवृत्ति होनेमें आत्मा व मनके संयोगविशेषसे स्वप्ननामक संस्कारसे विषयोंके न होनेमेंभी इंद्रियोंसे ज्ञान होनेके समान प्रत्यक्षाकार ज्ञान उत्पन्न होता है । वह स्वप्न तीन प्रकारका होता है संस्कारके प्रबल होनेसे, धातुके दोषसे व अदृष्टसे संस्कारकी प्रबलतासे जैसे कामी वा क्रोधी जब जिस अर्थको आदर करता (अभिलाषा करता) चिन्तन करते हुये सोता है तब वही चिन्तासन्तति प्रत्यक्षाकार (प्रत्यक्षरूप) होती है । धातुदोषसे जैसे वातप्रकृतिवाला अथवा वातरोगसे दूषित आकाश आदिका गमन (उडना) देखता है और पित्तप्रकृतिवाला अथवा पित्तरोगसे दूषित अग्निका प्रवेश करना व सोनेके पर्वत आदि देखता है व कफप्रकृतिवाला अथवा कफविकारसे दूषित नदी, समुद्र व बरफ आदिको देखता है अदृष्टसे जैसे जो अपनेको अनुभूत है व अनुभूत नहीं

है और जो ज्ञात है वा जो ज्ञात नहीं है उनमें शुभसूचक हाथीका चढ़ना छत्रका प्राप्त होना आदि देख पडता है यह सब संस्कार व धर्मसे होता है और इसके विपरीत तेलका लगाना ऊंटपर चढ़ना आदि स्वप्नमें देखना संस्कार व अधर्मसे होता है जो अत्यन्त अप्रसिद्धोंमें (अज्ञातपदार्थोंमें) स्वप्न ज्ञात होता है वह अदृष्टमात्रसे होता है स्वप्नान्तिक ज्ञान (स्वप्नमें हुये अनुभवके संस्कारसे उत्पन्न ज्ञान) यद्यपि जिसकी सम्पूर्ण इंद्रियाँ शान्त होगयी हैं स्वप्नअवस्थाको प्राप्त होता है उसीको होता है तथापि व्यतीत हुये ज्ञानप्रबंधका वर्त्तमानक्षणमें ज्ञान होनेसे वह स्मृति ही है इसप्रकारसे चार प्रकारकी अविद्या है प्रत्यक्ष लैंगिक स्मृति व आर्ष भेदसे वा नामसे विद्या (यथार्थ ज्ञान) भी चार प्रकारका है उनमेंसे अक्ष (इंद्रिय) में प्राप्त होकर इंद्रियद्वारा जो ज्ञान उत्पन्न होता है उसको प्रत्यक्ष कहते हैं घ्राण (नासिका) रसना (जिह्वा) चक्षु (नेत्र) त्वक् (चर्म) श्रोत्र (कर्ण) व मन यह अक्ष (इंद्रिय) हैं इनका पदार्थोंके साथ संयोग होनेसे द्रव्य आदि पदार्थोंमें प्रत्यक्ष उत्पन्न होता है । द्रव्य, शरीर, इन्द्रिय व विषयरूप तीन प्रकारका होता है । महत्पदार्थोंम (महान वा स्थूल, पदार्थोंमें) अनेक द्रव्यवत्त्व (अनेक द्रव्यवान होना) रूप प्रकाश, चतुष्टयके सन्निकर्षसे अर्थात् सामान्य, विशेष, द्रव्य, गुण व कर्म इन चारोंके सन्निकर्षसे धर्मआदिके समग्र होनेमें सामान्य विशेष, द्रव्य, गुण व कर्म विशेषणोंकी अपेक्षा रखनेवाले आत्मा व मनके सन्निकर्षसे (व्यवधानरहित संयोगविशेषसे) स्वरूपका ज्ञान होनामात्र प्रत्यक्ष उत्पन्न होता है यह चाक्षुष (नेत्रसम्बंधी) प्रत्यक्षके अभिप्रायसे कहा है इसका निदर्शन यह है यथा यह कहनेमें कि विषाणी (सींगवाली) शुक्ला (शुक्लरंगवाली) गौ (गाय) जाती है द्रव्यत्व अर्थात् गोत्व (गौहोना) सामान्य (जाति) है परन्तु अन्य जातियोंकी अपेक्षा विशेष है इससे सामान्य विशेष अर्थात् सामान्य

विशेष होनेके विशेषणयुक्त है व विषाण द्रव्य, शुक्ल गुण व चलना कर्म यह विशेषण है इन चारों विशेषणोंकी अपेक्षायुक्त आत्मा व मनके सन्निकर्षसे गौका प्रत्यक्ष होताहै। रूप, रस, गंध, स्पर्शोंमें अनेक द्रव्यवान् द्रव्यके समवायसे अपनेमें प्राप्त विशेषसे (विशेष धर्मसे) अपने आश्रयके सन्निकर्षसे नियत इन्द्रिय है निमित्त जिसका ऐसा ज्ञान उत्पन्न होता है श्रोत्रसमवेत (कर्णके साथ समवायसम्बंधयुक्त) शब्दका तीनके सन्निकर्षसे अर्थात् द्रव्य, समवाय, शब्दत्व आदि समवाय व श्रोत्र इन्द्रियसमवाय इन तीनोंका मनके साथ सन्निकर्ष होनेसे श्रोत्रइन्द्रियहीसे प्रत्यक्ष होता है । संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, स्नेह, वेग, द्रवत्व व कर्मोंका प्रत्यक्ष द्रव्योंके समवायसे आश्रयद्रव्यके समान चक्षु (नेत्रइन्द्रिय) व स्पर्शन (त्वचा) से ग्रहण होता है । बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्नोंका ज्ञान आत्मा व मनके सन्निकर्षसे होता है । भाव, द्रवत्व, गुणत्व, व कर्मत्व, आदि जो उपलभ्य (प्राप्तहोनेके योग्य) व आधार (आश्रय) में समवेत (समवाय-संयुक्त) हैं उनका उनके आश्रयके ग्रहण करनेवाली इन्द्रियोंसे ग्रहण होता है यह हम लौकिक जनोंका प्रत्यक्ष है । और जो हमसे विशिष्ट (विशेषताको प्राप्त) युक्तोंका अर्थात् ध्यानमें जिनका चित्त एकाग्र रहता है ऐसे योगीजनोंका योगसे उत्पन्न धर्मसे अनुग्रहको प्राप्त हुये मनके [illegible] आत्मा, परके आत्मा, आकाश, दि[illegible]न द्रव्योंमें व इन सबमें समवेत गुण, [illegible] व समवायमें अव्यपदेश्य (कथन योग्य नहीं) भीतर, वाहर सब देशमें यथार्थरूप साक्षात्कार ज्ञान उत्पन्न होता है । व वियुक्त योगियोंका अर्थात् जिनको समाधिके प्रभावसे विनाध्यानके सब साक्षात्कार होता है उनका उक्त चतुष्टयके सन्निकर्षसे योगसे उत्पन्न हुये धर्मके सामर्थ्यसे सूक्ष्म व्यवहित, (आडमें वा ओटमें प्राप्त) विप्रकृष्ट (दूरदेशमें प्राप्त

पदार्थोंमें प्रत्यय होना रूपज्ञान उत्पन्न होता है । उसमें द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य व विशेषोंमें स्वरूपमात्रका देखना प्रत्यक्ष प्रमाण है। द्रव्य आदि पदार्थ प्रमेय हैं आत्मा प्रमाता (प्रमाण करनेवाला) है द्रव्य आदि विषयक ज्ञान अर्थात् द्रव्य होनेआदिका विशेष प्रकारका ज्ञान होना प्रमिति है । सामान्य व विशेषके ज्ञान उत्पन्न होनेमें विभाग रहित स्वरूपमात्रका देखना वा जानना प्रत्यक्ष प्रमाण है उसमें अन्य प्रमाण नहीं है क्योंकि वह किसी प्रमाणसे फलरूप नहीं है स्वतः सिद्ध है अथवा सब पदार्थोंमें चतुष्टयके सन्निकर्षसे जो अवितथ (यथार्थ)अव्यपदेश्य (कथन योग्य नहीं) ज्ञान उत्पन्न होता है वह प्रत्यक्ष प्रमाण है द्रव्यआदि पदार्थ प्रमेय हैं आत्मा प्रमाता है व माध्यस्थसे (मध्यस्थ होनेसे) गुण व दोषका देखना प्रमिति है लिंग (चिह्न) के देखने वा जाननेसे जो ज्ञान उत्पन्न होता है। उसको लैंगिक कहते हैं । जो अनुमेय पदार्थ (अनुमान करने योग्य पदार्थ) के साथ सम्बन्धको प्राप्त हो अर्थात् देशविशेष व कालविशेषमें जिसका अनुमेयके साथ सम्बंध देखाजाय वा जाना जाय व अनुमेयही सहित अन्यत्र सबदेशमें वा एक देशमें ज्ञात हो विना उसके (अनुमेयके) न हो वह अप्रत्यक्ष पदार्थमें अनुमानका हेतु अर्थात् अप्रत्यक्ष पदार्थका जनानेवाला लिंग होता है वा कहा जाता है । और जो तीन रूप वा विशेषणसे कहेगये लक्षणसे एक धर्मसे अथवा दो धर्मोंमें विपरीत व विरुद्ध वा असिद्ध (अज्ञात) वा संदिग्ध (संदेहयुक्त) हो वह अनुमेयके ज्ञान प्राप्त होनेमें वा ज्ञान प्राप्त होनेके लिये लिंग नहीं होता है । जैसा कि महर्षि सूत्रकारने यह कहा है कि अप्रसिद्ध (अज्ञात) अनपदेश (हेत्वाभास) है व संदिग्ध (संदेहयुक्त) अनपदेश है । लिंगका निदर्शन यह है यथा जहां धूम होता है वहाँ अग्नि होती है अग्निके अभावमें धूम नहीं होता अर्थात् विना अग्निके धूम नहीं होता इस प्रकारसे जिस

अनुमान करनेवालेको व्याप्तिरूप सम्बंधका ज्ञान होताहै उसको सन्देह रहित धूम देखनेसे व सहचार (साथ होनेका सम्बन्ध) स्मरण करनेसे पश्चात् अग्निका निश्चय होताहै इस प्रकारसे देशकालसहित अनुमेयका लिंग होताहै। शास्त्रमें जो इसका यह कारण है इत्यादि सम्बन्धसे कार्य, कारण, संयोगि, विरोधि व समवायि यह लैंगिकके भेद ग्रहण कियाहै वह केवल निदर्शनके लिये कहा है यह निश्चय करनेके लिये नहीं कहा कि इतनेही भेद हैं क्योंकि उक्तभेदोंसे अधिक व भिन्नमेंभी लिंगका सम्बन्ध ज्ञात होताहै यथा अध्वर्युका (यजुर्वेदके जाननेवालेका) यज्ञविधिके मन्त्रोंका सुनाना व्यवहित (आडमें प्राप्त) होता(हवन करनेवाले)का लिंग है। पूर्णमासीके चन्द्रमाका उदय होना समुद्रकी वृद्धि व कुमुदके प्रफुल्लित होनेका लिंग है ऐसाही और भी जानना चाहिये। सब प्रकारका लैंगिक ज्ञान अर्थात् अनुमान इसका यह है ऐसे सम्बंधमात्रके ज्ञानसे सूत्रकारके वचनसे सिद्ध होताहै वा सिद्ध है। वह लैंगिक ज्ञान दोप्रकारका होता है दृष्ट व सामान्यतोदृष्ट जो ज्ञात पदार्थ व साध्य पदार्थके जातिमें कुछ भेद न होनेमें अनुमान होता है वह दृष्ट है यथा यह जानकर कि सास्ना (गलकम्बल) केवल गौमें होताहै देशान्तरमें (अन्य देशमें) सास्नामात्र देखनेसे यह गौ है यह ज्ञान होता है व प्रसिद्ध (ज्ञातपदार्थ) व साध्यमें अत्यन्त जातिभेद होनेमें जो लिंगसे (लिंगद्वारा) अनुमेय धर्मके सामान्य (जाति) की अनुवृत्तिसे (वैसाही होनेके ज्ञानसे) अनुमान होताहै वह सामान्यतोदृष्ट है। यथा कर्षक (खेती करनेवाला) वणिक् (बनिया) व राजाके पुत्रोंकी वृत्तिकी सफलता जानकर वा देखकर यह अनुमान होता है कि ऐसेही वर्णाश्रमियोंके कर्म व अनुष्ठानके फलकी प्राप्ति होगी अर्थात् दृष्ट (प्रत्यक्ष) प्रयोजनको लेकर वा मानकर धर्ममें प्रवर्त्तमानोंके फलका अनुमान होता है। अनुमानमें लिंगदर्शन (चिह्नका देखना वा

जानना) प्रमाण है अग्निका ज्ञान प्रमिति है अथवा अग्निका ज्ञानही प्रमाण है व अग्निमें गुण व दोषोंका माध्यस्थ दर्शन (यथार्थ भेदरूपसे देखना) प्रमिति है जो प्रमाण अपने निश्चित (पूर्वनिश्चित) अर्थमें होताहै वह अनुमान है समान विधि होनेसे (अनुमानहीके समान विधि होनेसे) शब्दआदिकोंका भी अनुमान हीमें अन्तर्भाव है अर्थात् शब्दआदि अनुमानहीके अन्तर्गत हैं वा अन्तर्गत समझना चाहिये जिसने व्याप्तिको ग्रहण किया है वा जाना है । ऐसे अनुमान करनेवालेको लिंग देखनेसे व प्रसिद्धि (व्याप्ति) के अनुस्मरण (पूर्वके समान स्मरण)से अतीन्द्रिय (अप्रत्यक्ष) पदार्थमें अनुमान होताहै ऐसेही शब्दआदिसेभी अनुमान होताहै । श्रुतिस्मृतिरूप होनेपरभी वेदवक्ताके प्रामाण्यकी अपेक्षायुक्त होनेसे जैसा कि सूत्रकारने कहाहै कि उसके (ईश्वरके) वचन होनेसे आम्नाय (वेद) का प्रामाण्य है ऐसे वचनसे अनुमानही है और लिंगसे शब्द अनित्य है अर्थात् जैसा कि सूत्रकारने यह कहाहै कि बुद्धिपूर्वक वाक्यकी रचना वेदमें है वा ज्ञात होतीहै बुद्धिपूर्वक दानका देना आदि वेदमें कहाहै ऐसे उक्त अनित्य होनेके लिंग (चिह्न वा लक्षण) से शब्द अनित्य है जिस पुरुषका स्वभाव वा आचरण प्रसिद्ध है उसको चेष्टासे (चेष्टा देखकर) जान लेना अर्थात् निश्चय करलेना यहभी अनुमानही है गौके समान गवय (नीलगाव) होता है ऐसा आप्तवाक्यसे अप्रसिद्ध (अज्ञात) गवयके प्रतिपादन होनेसे जो उपमान प्रमाण होता है वह आप्तवचनही है (आप्तवचनरूपही है) दर्शनार्थापत्ति (देखनेसे अर्थापत्ति होना) केवल विरोधी अनुमान है श्रुतार्थापत्तिभी (सुननेसे अर्थापत्ति होनाभी) शब्दके सुननेसे अनुमित अनुमान है अर्थात् अनुमान किये शब्दके अर्थसे उसके सम्बंध स्मरणसे अनुमान करना है । संभवभी एक दूसरेके विना होनेवाला न होनेसे सम्बंधसे ज्ञान होनेसे अनुमानही है ।

अभावभी अनुमानही है यथा उत्पन्न कार्य कारणके होनेका लिंगहै ऐसेही कार्यका न होना कारणके अभावका (न होनेका) लिंगहै ऐतिह्य: यथार्थरूप अन्यथाभावरहित आप्तोपदेशही है। यह अपनी बुद्धिसे अपने आत्मामें अपने अर्थ अनुमान है और पांच अवयवयंयुक्त वाक्यसे अपने निश्चित अर्थका प्रतिपादन करना परार्थ (परके लिये) अनुमान है अर्थात् परको उस अर्थको जनानेके लिये अनुमान है संशयित (संशययुक्त ज्ञान) व विपरीत यह दोनों जिनको होतेहैं उनके लिये पांच अवयवसंयुक्तही वाक्यसे अपने निश्चित अर्थको प्रतिपादन करना परार्थअनुमान समझना चाहिये। प्रतिज्ञा, अपदेश, निदर्शन, अनुसन्धान व प्रत्याम्नाय यह पांच अवयव हैं। उनमेंसे अनुमेय पदार्थका विरोधरहित कथन प्रतिज्ञा है अर्थात् जिस धर्मके प्रतिपादनकी इच्छा कीगईहै अर्थात् जिस धर्मके प्रतिपादनका मनोरथ है उस धर्मविशिष्ट (उस विशेषधर्मसंयुक्त) धर्मीका हेतु विषयके प्रतिपादनके लिये उपदेशमात्र करना प्रतिज्ञा है यथा यह कहना वा उपदेश करना कि वायु द्रव्य है। विरोधरहित (यथार्थ धर्म) ग्रहण करनेसे जो प्रत्यक्ष, अनुमान, वेद व अपने शास्त्र व अपने वचनके विरोधी हैं वह निरस्त होतेहैं अर्थात् हारजाते हैं यथा ऐसा कहना कि अग्नि उष्ण (गरम) नहीं है प्रत्यक्ष विरोधी (प्रत्यक्षके विरुद्ध) है। मेघ आकाश है यह अनुमानविरोधी है ब्राह्मणको सुरा (मदिरा) पान करना चाहिये यह आगम (वेद) विरोधी है। उत्पत्तिसे पहिले कार्य सत् (विद्यमान) है वैशेषिक शास्त्रवालेका ऐसा कहना स्वशास्त्रविरोधी है (अपने शास्त्रके विरुद्ध है) शब्द अर्थका प्रत्यायक (जनानेवाला) नहीं है यह स्ववचन विरोधी है (अपने वचनका विरोधी है) इन विरोधोंसे रहित धर्मविशिष्ट धर्मीका कहना प्रतिज्ञा है जिससे उक्त विरोधयुक्त कहनेवाले विरोधी निरस्त होते हैं। लिंग वचन अपदेश (हेतु) है अर्थात् जो अनुमे-

यके साथ रहता है और उसके समानजातीय पदार्थमें एक देशमें वा सब देशमें सामान्यसे ज्ञात होता है व उसके विपरीतमें कहीं नहीं होता वह लिंग है यह लिंगका लक्षण कहा गया है इस लिंगका वचन (कहना) अपदेश (हेतु) है अर्थात् जिस वचनसे यह लिंग वाच्य होता है वह अपदेश है यथा वायुके द्रव्य होनेके साधनमें यह कहना क्रियावान् होनेसे वा गुणवान् होनेसे ऐसा माननेमें जो अनुमेयमें क्रियावत्त्व व गुणवत्त्व है इन भेदोंमेंसे गुणवत्त्व (गुणवान् होना) तौ उसके सब समानजातीय पदार्थोंमें अर्थात् सब द्रव्योंमें हैं क्रियावत्त्व (क्रियावान् होना) सबमें नहीं है अर्थात किसी द्रव्योंमें है व किसीमें नहींहै यह दोनों इस वायुद्रव्यके साथही हैं इससे वायुमें दोनोंका होना रूप लिंगका कहना अपदेश है यह सिद्ध है इसीसे वा ऐसेही जो अप्रसिद्ध अर्थात जो धर्म सिद्ध वा ज्ञात नहीं है उसका जो विरुद्ध संदिग्ध (संदेहयुक्त) व अनध्यवसित (निश्चयरहित) वचनसे कथन है वह अनपदेश (हेत्वाभास) है ऐसा उक्त (कथित) होता है, उनमें असिद्ध चारप्रकारका होता है उभयासिद्ध, अन्यतरासिद्ध, तद्भावासिद्ध व अनुमेयासिद्ध । जो वादी व प्रतिवादी दोनोंके मतसे असिद्ध हो वह उभयासिद्ध है यथा यह कहना कि सावयव (अवयवसंयुक्त) होनेसे शब्द अनित्य है जो एकहीके मतसे असिद्ध हो वह अन्यतरासिद्ध है यथा यह कहना कार्य होनेसे शब्द अनित्य है । उसके भावहीकी सिद्धि न होना तद्भावासिद्ध है यथा धूमके अभावमें अग्निके अनुमान करनेमें तद्भावासिद्ध है । अनुमेयका सिद्ध न होना अनुमेयासिद्ध है यथा कृष्णरूप होनेसे तम (अंधकार) पार्थिव (पृथिवीकार्य) है जैसे हेतु उभयासिद्ध वा अन्यतरासिद्ध होता है ऐसेही आश्रयासिद्ध दो प्रकारका होता है जो अनुमेयमें विद्यमान न होनेमेंभी उसके समानजातीयमें किसीमें नहीं है व उसके विपरीतमें है वह विपरीत साधनसे विरुद्ध हेत्वाभास है अर्थात् उसको विरुद्ध

नामसे कहते हैं जैसे विषाणी (सींगवाला) है इससे अश्व (घोडा) है यह कहना और जो अनुमेयमें है परन्तु उसके समानजातीय व असमानजातीय दोनोंमें साधारण है इससे वह होनेपरभी संदेह उत्पन्न करनेवाला होनेसे संदिग्ध (संदेहयुक्त) है अर्थात् संदिग्ध कहा जाता है । यथा यह कहनेमें कि विषाणी है इससे गौ है । और कोई यह कहते हैं कि एकमें यथोक्तलक्षणरूप दो विरुद्ध हेतुओंके प्राप्त होनेमें जिसमें संशय होता है यह दूसरे प्रकारका संदिग्ध है । यथा क्रियावान् व स्पर्शरहित होनेमें मनके मूर्त (मूर्तिमान) व अमूर्त (मूर्तिरहित) होनेमें संदेह होता है । यही मिलेहुये दोनोंमें एकपक्षके संभव न होनेसे अचाक्षुष प्रत्यक्षके समान (विना-नेत्रसे देखे मनसे प्रत्यक्ष होनेसे प्रत्यक्षके समान) यह विशेषही है इससे इसको हम अनध्यवसित (अनिश्चित) कहैंगे अर्थात् हमारे मतमें संदिग्ध नहीं है यह अनध्यवसित है । यादि यह शंका हो कि शास्त्रमें दो प्रकारका ज्ञान होना संशयका कारण कहा जाता है तो उत्तर यह है कि दोनों विषयका ज्ञान होनेसे संशय नहीं है अभिप्राय इसका यह है कि जहां समान धर्ममात्र देखनेसे धर्मीमें दोनोंके होने-का ज्ञान नहीं होता किन्तु दोमेंसे एक कौनसा है ऐसा ज्ञान होता है वहां संशय कहा जाता है यहां मनका क्रियावान् होना व स्पर्श-रहित होना जो मूर्त्त व अमूर्त विरुद्धोंके गुण हैं दोनोंका यथार्थ-ज्ञान होता है दोमेंसे एकके होने व एकके न होनेका विमर्श नहीं होता जो यह शंका हो कि संशयकी उत्पत्तिमें विषयका द्वैतज्ञान कारण होता है तो उत्तर यह है कि समान बल होनेमें उन दोनों-के परस्परके विरोधसे निर्णय न होनाही फल होगा संशयका हेतु होना न होगा और दूसरे प्रकारके अनुमेय उद्देशका आगम (शास्त्र) से बाधित होनेसे उनका तुल्यबलत्वभी नहीं है इससे यह केवल एकप्रकारका विरुद्धहीका भेद है । जो अनुमेयमें विद्य-मान है वह उसके समान व असमानजातीय पदार्थोंमें न हो तो

भी वह अन्यतरासिद्ध अर्थात् प्रतिवादीके मतसे अन्य द्वितीय जो यह शास्त्र है उसमें असिद्ध अनध्यवसायका हेतु होनेसे अनध्यवसित है यथा सत् (विद्यमान) कार्य उत्पन्न होता है यह असिद्ध अनपदेश है ऐसे वचनसे (सूत्रकारके ऐसे वचनसे) अर्थात् अप्रसिद्ध (असिद्ध वा विरुद्ध) असत् (पक्ष धर्म नहीं) व संदिग्ध अनपदेश (हेत्वाभास) है सूत्रकारके ऐसे वचनसे विरुद्ध नहीं है तात्पर्य यह है कि सूत्रकारके कहनेके अनुसार होनेसे यह असिद्धरूप हेत्वाभास है । यदि यह शंका हो कि सूत्रकारने यह कहा है कि समान जातीयोंमें व भिन्न अर्थोंमें (असमान-जातीयोंमें) विशेषका दोनों प्रकारसे ज्ञान होनेसे शब्दमें संशय होता है इससे शास्त्रमें यह विशेषसंशयका हेतु कहा गया है इसका उत्तर यह है कि इसका अन्य अर्थ होनेसे (अन्य आशय होनेसे) संशयका हेतु नहीं है अर्थात् शब्दमें जो श्रवणग्राह्य (श्रवणसे ग्रहण योग्य) शब्दत्व (शब्द होना) धर्म है उसका शब्दमें विशेष होनेके ज्ञानसे शब्दमें संशयकी सिद्धि नहीं होती यह उक्त होनेपर अब यह जानना चाहिये कि शब्दत्व द्रव्य आदि वा अन्य गुणआदिका विशेष नहीं है किन्तु उनमें शब्द होना सामान्य वा साधारणही सिद्ध होता है तिससे तुल्यजातीयोंमें व भिन्न अर्थोंमें द्रव्यआदि भेदोंके एक एक प्रकारसे विशेषके दोनोंमें (समान व असमानजातीयोंमें) ज्ञात होनेसे ऐसा कहा है सशयका कारण नहीं कहा । अन्यथा छहों पदार्थोंमें संशय होनेका प्रसंग होगा तिससे सामान्यही प्रत्यय (ज्ञान) से संशय होता है यह सिद्धान्त है ।

निदर्शन (उदाहरण) दोविध (प्रकार) का होता है साधर्म्यसे व वैधर्म्यसे । सामान्य अनुमेयके साथ लिङ्गके सामान्यका होना जानना साधर्म्य निदर्शन है यथा जो क्रियावान् है वह द्रव्य है यथा बाण । विरुद्ध अनुमेयके साथ लिंगके अभावका जानना वैधर्म्य

निदर्शन है यथा जो द्रव्य है वह क्रियावान् नहीं होता यथा सत्ता इससे (निदर्शनसे) निदर्शनाभास (मिथ्या निदर्शन) निरस्त (खण्डित) होते हैं । मिथ्यानिदर्शन यह है यथा अमूर्त्त होनेसे शब्द नित्य है क्योंकि जो अमूर्त्त (मूर्त्तिरहित) होता है वह नित्य ज्ञात होता है जैसे परमाणु जैसे कर्म जैसे स्थाली (बटुवा) जैसे तम आकाशके समान और जो द्रव्य होता है वह क्रियावान् होता है। जो लिङ्ग व अनुमेय दोनों आश्रयासिद्धिमें अनुगत (प्राप्त) न हों विपरीतमें (विरुद्धमें) अनुगत हों वह साधर्म्यनिदर्शनाभास (समान धर्म होनेमें मिथ्या उदाहरण) हैं यथा जो अनित्य है वह मूर्त है यह ज्ञात है यथा परमाणु यथा कर्म यथा आकाश यथा तम घटके समान और जो क्रियारहित है वह द्रव्य नहीं है यह विदित है । ऐसेही लिंग व अनुमेय दोनों जो व्यावृत्त न हों व आश्रयासिद्ध हों (आश्रयसे असिद्ध हों) ऐसे व्यावृत्त व विपरीत व्यावृत्त वैधर्म्य निदर्शनाभास (विरुद्ध धर्मसे मिथ्या निदर्शन वा उदाहरण) होते हैं वा कहे जाते हैं । निदर्शनमें अनुमेयके सामान्यके साथ दृष्ट (देखे वा जानेहुये) लिंग सामान्यको अनुमेयसे मिलाना अनुसन्धान है अर्थात् निदर्शनमें जो लिंग सामान्य अनुपलब्धशक्तिक है अर्थात् शक्तिको नहीं प्राप्त हुवा अनुमेयके धर्ममात्रसे (धर्ममात्रके साथ) कहा गया है वह साध्यसामान्य (साध्यके सामान्य) के साथ ज्ञात हुवा अनुमेयमें जिस वचनसे अनुसन्धान किया जाता है (मिलान किया जाता है) वह अनुसन्धान है अर्थात् उसको अनुसंधान कहते हैं जैसे यह कहना कि तथा (तैसेही) यह वायु क्रियावान् है और अनुमेयके अभावमें उसका न होना जानकर ऐसा कहना कि वैसा वायु क्रियारहित नहीं है अनुसन्धान है । अनिश्चित (निश्चय न किये गये) अनुमेयत्वसे अनुमेय (होनेमात्रसे) कहे गयेमें परके निश्चय करानेके लिये फिर प्रतिज्ञावचनको कहना प्रत्याम्नाय है

अर्थात् निश्चयरहित प्रतिपाद्यभावसे कहेहुयेमें हेतुआदि अवयवोंसे गृहीत (ग्रहण कीगई) शक्तियोंका परको निश्चय ठहरानेके लिये समाप्तिवाले वाक्यके साथ प्रतिज्ञाको फिर कहना प्रत्याम्नाय है जैसे यह कहना कि तिससे यह द्रव्यही है । विना इस वाक्यके हुये पूर्वके सब अवयव वा कुछ अवयव अपने अर्थको सिद्ध नहीं करते अर्थात् पूर्व अवयवोंसे कुछ फल प्राप्त नहीं होता । जो यह कहा जाय कि गम्यमान (प्राप्त होते हुये) अर्थसे हो जायगा तो अतिप्रसंगसे (जितना प्राप्त होना इष्ट है उससे अधिकमें प्राप्त हो जानेसे) ऐसा नहीं होसकता । प्रतिज्ञाके पश्चात् हेतुमात्रही कहना चाहिये फिर विद्वानोंको अन्वयव्यतिरेकसे (हेतुके साथ योग व भेद वा मेल व विरोध होनेसे) अर्थकी सिद्धि होजायगी तिससे इसीमें (प्रत्याम्नायहीमें) सर्वथा अर्थकी समाप्ति होतीहै अर्थात् अभिप्राय पूर्ण होता है यथा शब्द अनित्य है यह कहनेसे निश्चयरहित अनित्यत्वमात्रविशिष्ट शब्द कहा जाता है । प्रयत्नके पश्चात् उत्पन्न होनेसे इस कथनसे साधन धर्ममात्र कहाजाताहै लोकमें जो प्रयत्नके पश्चात् होता है अर्थात् प्रयत्नसे उत्पन्न होताहै वह अनित्य होता है यह प्रत्यक्ष है जैसे घट इससे साध्य सामान्यके साथ साधनसामान्यका समान होनामात्र कहाजाता है । जो प्रयत्नसे नहीं होता वह नित्य होता है यथा आकाश इससे साध्यके न होनेमें साधनका न होना दिखाया जाता है प्रयत्नसे उत्पन्न शब्द वैसा नहीं है इसप्रकारसे अन्वय व व्यतिरेकसे दृष्ट (विदित वा प्रत्यक्ष हुये) सामर्थ्यवाले साधनसामान्यका (साधनके सामान्यका) शब्दमें अनुसंधान प्राप्त होता है । तिससे शब्द अनित्य है इस वाक्यसे शब्द अनित्यही है इस प्रतिपादनकी इच्छा किये गये अर्थकी सर्वथा समाप्ति प्राप्त होती है । तिससे पांच अवयवोंसंयुक्तही वाक्यसे (वाक्यके द्वारा) अपने निश्चित अर्थका प्रतिपादन परके लिये किया जाता है । इसप्रकारसे परार्थ (परके लिये) अनुमान सिद्ध है । विशेष-

के दर्शन (ज्ञान) से उत्पन्न संशयका विरोधी निश्चयरूप ज्ञान निर्णय है अर्थात् यह प्रत्यक्ष वा अनुमान जो विशेषके दर्शन(ज्ञान) से संशयका विरोधी अर्थात् संशयरहित निश्चयरूप उत्पन्न होता है वह निर्णय है । यथा स्थाणु व पुरुषकी ऊंचाईमात्रकी समानता देखनेसे प्रत्यक्ष विशेषोंमें दोनोंके विशेषोंके स्मरणसे यह स्थाणु है अथवा पुरुष है ऐसा संशय उत्पन्न होनेमें शिर,पाणि (हाथ) आदि विशेषोंके देखनेसे यह पुरुषही है यह निश्चयज्ञान होना प्रत्यक्ष निर्णय है । विषाणमात्र देखनेसे यह गौ है अथवा गवय (नील गाव) है ऐसा संशय होनेमें सास्ना (गलकम्बल) मात्र देखनेसे यह गौही (गायही) है यह निश्चय होना अनुमाननिर्णय है । लिङ्ग-दर्शन, इच्छा, स्मरण आदिकी अपेक्षायुक्त आत्मा व मनके संयोग-विशेषसे तीव्र वा अत्यन्त अभ्यास व आदर व प्रत्यय (बोध) से उत्पन्न होनेसे व संस्कारसे देखे व सुनेहुये व अनुभूत (जानेहुये) पदार्थोंमें विशेष अनुव्यवसाय(फिर निश्चय करना) इच्छा, अनुस्मरण, द्वेष जिसकी उत्पत्तिके हेतु है वह व्यतीत हुये विषयोंवाली वा संबंधी बुद्धि स्मृति है अर्थात् जिस वृत्तिसे पूर्वमें प्रत्यक्ष हुये व्यतीत विषयोंके स्वरूपका ज्ञान वर्त्तमानमें उदय होता है वह स्मृति है । वेदके धारण करनेवाले ऋषियोंको आत्मा व मनके संयोग विशेषसे व धर्मविशेषसे जो भूत भविष्यत् वर्त्तमान कालवाले व अतीन्द्रिय पदार्थोंमें (जो इन्द्रियसे ग्राह्य नहींहैं ऐसे पदार्थोंमें) व धर्मआदि पदार्थ जो ग्रन्थमें वर्णित हैं व जो वर्णित नहीं हैं उनमें प्रातिभज्ञान (योगसे उत्पन्न ज्ञानविशेष) होता है यथा आत्माका तत्त्वज्ञान उत्पन्न होता है उसको आर्ष कहते हैं वह अधिक वा बहुधा देवता व ऋषियोंको होता है । कभी लौकिक जनोंकोभी किसी संस्कारसे होता है यथा कोई कन्या कहती है कल्ह मेरा भाई आनेवाला है मेरा हृदय कहता है और कहना सत्य होता है इत्यादि सिद्धदर्शन (सिद्धोंका ज्ञान) ज्ञानान्तर (अन्यप्रकारका ज्ञान) नहीं है क्योंकि

सूक्ष्म व्यवहित (व्यवधानको प्राप्त) विप्रकृष्ट (दूर देशमें उपस्थित) पदार्थोंमें जो देखनेवाले सिद्धोंका दृश्य (देखने योग्य) अंजनपाद लेप व गुटिकाआदि सिद्धिओंका ज्ञान होता है वह प्रत्यक्षही है और ग्रह नक्षत्रोंके सञ्चार (चाल) आदिके निमित्त (कारण) जानकर स्वर्ग अन्तरिक्ष व भूमिवाले प्राणियोंके धर्म अधर्मके फलोंका जो जानना है वह अनुमानही है । और जो लिंगकी अपेक्षारहित धर्म आदिमें ज्ञान इष्ट है वहभी आर्ष व प्रत्यक्ष दोमेंसे एकमें अन्तर्भूत वा अन्तर्गत है वा होता है ॥

इति बुद्धिपदार्थः ।

जो अनुग्रहरूप (इच्छाके अनुकूल) हो वह सुख है अर्थात् माला आदि जो अभिप्रेत विषय हैं जिनकी हृदयसे इच्छा (चाह) होती है ऐसे इच्छा किये गये विषय हैं उनके समीप होनेमें इष्टकी प्राप्तिमें इन्द्रिय व अर्थके सन्निकर्षसे धर्म आदिकी अपेक्षायुक्त आत्मा व मनके संयोगसे अनुग्रह (अनुकूलता) अभिष्वंग (राग-वा प्रीति) व नेत्रआदिकी प्रसन्नताजनक (उत्पन्न करनेवाला) जो गुण उत्पन्न होता है वह सुख है । प्रतीत हुये विषयोंमें स्मृतिसे उत्पन्न व अनागत (भविष्यत्) विषयोंमें संकल्पसे उत्पन्न सुख होता है और जो ज्ञानियोंको विषयोंके अनुस्मरण व संकल्पोंके न होनेमें प्रकट होता है वह विद्या (ज्ञान) शम, संतोष व धर्मविशेष निमित्त (कारण) से होता है ।जो उपघातरूप होता है वह दुःख है अर्थात् विष आदि अनभिप्रेत (जो अभिप्रेत नहीं है) विषयोंके समीप होनेमें अनिष्टकी प्राप्तिमें इंद्रिय व अर्थके सन्निकर्षसे अधर्मकी अपेक्षा रखनेवाले वा संयुक्त आत्मा व मनके संयोगसे अमर्ष (क्रोध) उपघात दीनता निमित्तसे जो उत्पन्न होता है वह दुःख है । अतीत (व्यतीत) सर्प, व्याघ्र आदिमें स्मृतिसे उत्पन्न व भविष्यत्‌में संकल्पसे उत्पन्न दुःख होता है ।

अपने लिये अथवा परके लिये जो प्राप्त नहीं है उसके प्राप्त होनेकी प्रार्थना इच्छा है वह आत्मभाव मनके संयोगसे वा सुख आदिके विचार रूप देखनेसे उत्पन्न होतीहै व प्रयत्न, स्मृति, धर्म, अधर्मकी हेतु होतीहै काम, अभिलाषा, राग, संकल्प, कारुण्य, वैराग्य, उपधा-भाव व ऐसेही अन्यभी इच्छाके भेद हैं। मैथुनकी इच्छा काम है। भोजनकी इच्छा अभिलाषा है। वारंवार विषयोंमें मन लगानेकी इच्छा राग है। जो प्राप्त नहीं है वा नहीं हुवा उसके करनेकी इच्छा सङ्कल्प है। स्वार्थकी अपेक्षा न करके परके दुःख नाश करनेकी इच्छा कारुण्य है। दोष देखनेसे अर्थात् दोष जानकर विषयके त्याग करनेकी इच्छा वैराग्य है। परके वंचन (ठगने) की इच्छा उपधा है। अन्तःकरणमें गूढ (छिपी हुई) इच्छा भाव है। करनेकी इच्छा, त्यागनेकी इच्छा, इत्यादि क्रियाभेदसे इच्छाके भेद होते हैं।

प्रज्वलनात्मक द्वेष है अर्थात् जिसके होनेमें प्रज्वलित हुयेके समान आत्माको मानता है वह द्वेष है वह आत्मा व मनके संयोगसे दुःखके विचारनेसे अथवा स्मृतिसे जाननेसे उत्पन्न होता है व प्रयत्न, स्मृति, धर्म व अधर्मका हेतु (कारण) होता है द्रोह, क्रोध, मन्यु, अक्षमा, अमर्ष यह द्वेषके भेद हैं इनमेंसे जो जल्दी विनाशको प्राप्त होताहै वह क्रोध है। जो बहुत दिनोंतक लगा रहे वा बना रहे व अपकार फल करनेवाला हो वह द्रोह है। अपकार करनेमें समर्थ नहीं है ऐसे असमर्थ अपकारीमें जो निगूढ द्वेष होता है वह मन्यु है। परसे कियेहुये अपकारको न सहना अक्षमा है। जो अपने गुणके तिरस्कार होनेमें अपकार करनेमें समर्थ न हो ऐसा द्वेष अमर्ष है इत्यादि द्वेषके भेद हैं।

इति द्वेषः।

प्रयत्न, संरंभ व उत्साह यह पर्याय हैं अर्थात् एकही अर्थके वाचक हैं। प्रयत्न दो प्रकारका होताहै जीवनपूर्वक व इच्छा द्वेष

पूर्वक । सोये हुयेके प्राण अपानके सन्तानका जो प्रेरक होताहै व जागनेमें इन्द्रियान्तरमें (अन्यसे अन्य इन्द्रियमें) अंतःकरणकी (मनकी) प्राप्तिका हेतु होताहै वह जीवनपूर्वक है । इस जीवन-पूर्वक प्रयत्नकी धर्म अधर्मकी अपेक्षा करने वा रखनेवाले आत्मा व मनके संयोगसे अथवा धर्म अधर्म लक्षण युक्त आत्मा व मनके संयोगसे उत्पत्ति होती है । दूसरा (इच्छा द्वेषपूर्वक) हितकी प्राप्ति व अहितके निवारणमें जो समर्थ है ऐसे व्यापारका हेतु होता है और इच्छा वा द्वेष लक्षण वा कारण युक्त आत्मा व मनके संयोगसे शरीरधारकभी (शरीर धारण करनेवालाभी) प्रयत्न उत्पन्न होता है ॥

इति प्रयत्नः ।

जो जल व भूमिके (जल व भूमि वा जल व भूमिके कार्यपदार्थोंके) गिरनेका कारण है वह गुरुत्व है जो गिरनेका कर्म प्रत्यक्ष नहीं है वह अनुमेय है (अनुमानसे जाननेके योग्य है) । संयोग, प्रयत्न व संस्कार उसके विरोधी हैं जलआदिके परमाणुओंके रूपआँदिके समान उसका (गुरुत्वका) नित्य व अनित्य होना सिद्ध होताहै ।

इति गुरुत्वम् ।

जो वहनेका कारण है वा होता है वह द्रवत्व है व तीन द्रव्यमें (पृथ्वी, जल व तेजमें) होता है सांसिद्धिक व नैमित्तिक भेदसे वह दो प्रकारका होता है । जलका विशेष गुण सांसिद्धिक है (आपसे सिद्ध है) व पृथ्वी व तेजका सामान्य गुण नैमित्तिक है । गुरुत्वके समान सांसिद्धिकका नित्य व अनित्य होनां सिद्ध है । यदि यह शंका हो कि जमजाना (ओला व बरफ होनेमें जमना) प्रत्यक्ष होनेसे सांसिद्धिक द्रवत्व कहना अयुक्त है (ठीक नहींहै) तो उत्तर यह है कि अयुक्त नहीं है दिव्य तेज (स्वर्गसम्बंधी सूर्य्य वा विद्युत् आदिका तेज) संयुक्त जलके परमाणुओंके परस्परके

संयोगसे द्रव्यका आरंभक (उत्पन्न करनेवाला) संघात (जुडना व जमकर कठिन होना) नामी संयोग होता है उससे परमाणुओंका द्रवत्व रुकजानेसे हिम (बरफ) व करक (वर्षाके पत्थर) आदिमें द्रवत्वकी उत्पत्ति नहीं होती । अग्निके संयोगसे उत्पन्न पृथिवी व तेजयुक्त पदार्थोंका द्रवत्व नैमित्तिक है जैसे घी, रांगा, मोम व आकरजआदि (खानसे उत्पन्न धातुआदि) द्रव्योंके कारणोंमें अग्निके संयोगसे व वेगकी अपेक्षासे कर्मकी उत्पत्ति होनेमें उससे उत्पन्न विभागोंसे द्रव्यके आरंभक संयोगके नाश होनेसे कार्यद्रव्यकी निवृत्ति होनेपर औष्ण्य (गरमी) की अपेक्षा करते वा औष्ण्य लक्षणयुक्त अग्निके अन्य संयोगसे (दूसरे प्रकारके संयोगसे) स्वतंत्र परमाणुओंमें द्रवत्व उत्पन्न होता है । उस द्रवत्वसे उन परमाणुओंमें भोगियोंके अदृष्टकी अपेक्षा करते वा अदृष्ट (भाग्य लक्षण) धर्मयुक्त आत्मा व अणुओंके संयोगसे कर्मकी उत्पत्ति होनेमें उससे उत्पन्न हुए संयोगसे द्व्यणुकआदि क्रमसे कार्य्यद्रव्य उत्पन्न होताहै उसमें रूप उत्पन्न होनेहीके कालमें (कारण गुणके अवयवोंके गुणके) क्रमसे द्रवत्व उत्पन्न होता है ।

इति द्रवत्वम् ।

स्नेह जल वा जलोंका विशेष गुण है संग्रह (पिण्ड बांधना) व शुद्धिआदिका हेतु है (गुरुत्वके समान) इसके नित्य व अनित्य होनेकी सिद्धि है अर्थात् यहभी नित्य व अनित्य होता है ।

इति स्नेहः ।

संस्कार तीनप्रकारका होता है वेग, भावना व स्थितिस्थापक । वेग पांच मूर्तद्रव्योंमें (पृथिवी, जल, तेज, वायु व मनमें) निमित्त विशेषकी अपेक्षा करनेवाले वा निमित्तविशेषकी अपेक्षायुक्त कर्मसे उत्पन्न होता है व नियत दिशा व क्रियाके प्रबन्धका हेतु होताहै, स्पर्शवान् द्रव्योंका संयोग उसका विरोधी है । कहीं कारण गुणपूर्वक

---

१ स्पर्शवान् द्रव्योंके संयोगसे वेग नष्ट होता है उक्त संयोगके नाशसे उसको विरोधी कहा है ।

क्रमसे उत्पन्न होता है । और भावनासंज्ञक (नामक) एक आत्माका गुण है । दृष्ट (देखे) श्रुत (सुने) व अनुभूत (जानेहुए) पदार्थोंमें स्मृति व प्रत्यभिज्ञान (पहिचान) का हेतु होता है ज्ञान, मद, दुःख आदि उसके विरोधी हैं अर्थात् ज्ञानआदिसे उसका नाश होता है पटु अभ्यास (तीव्र अभ्यास) व आदरप्रत्यय (आदरके बोध) से उत्पन्न होता है तीव्र प्रत्ययकी अपेक्षायुक्त आत्मा व मनके संयोग विशेषसे आश्चर्यवाले पदार्थमें पटु संस्कार (तीव्र वा अतिशय संस्कार) उत्पन्न होता है जैसे दाक्षिणात्यको (दक्षिणमें रहनेवालेको) ऊंटके देखनेसे होता है । अभ्यास किये गये विद्या, शिल्प (कारीगरी) व व्यायाम (व्यापार वा कसरत) आदिकोंमें जिस अर्थका अभ्यास किया जाता है उसमें पूर्व पूर्व संस्कारकी जो अपेक्षा करते हैं वा जिनमें अपेक्षाका सम्बंध है ऐसे उत्तर उत्तर प्रत्ययोंकी अपेक्षासंयुक्त आत्मा व मनके संयोगसे संस्कारकी उत्कृष्टता वा अधिकता होती है । प्रयत्नसे मनको नेत्रोंमें स्थापन करके जो अपूर्व अर्थको देखनेकी इच्छा करता है उस देखनेकी इच्छा करनेवालेको विद्युत्सम्पात देखनेके समान (विजुली गिरना देखनेके समान) जो आदर प्रत्यय होता है उसकी अपेक्षा संयुक्त आत्मा व मनके संयोगसे संस्कारका अतिशय (अधिक होना) उत्पन्न होता है । जैसे देवहृदमें (देवकुण्डमें) सुवर्ण व चांदीके कमल देखनेसे होता है । स्थितिस्थापक वह है जो सघन अवयवोंके सन्निवेश (सन्धि वा योग) से विशिष्ट (विशेषताको प्राप्त) कालान्तरतक रहनेवाले स्पर्शवान् द्रव्योंमें वर्तमान अन्यथा किये हुये अपने आश्रयको यथावस्थित (जैसा स्थित है वैसा) स्थापन करता है अर्थात् जैसा है वैसेही स्थिर रखता है । स्थावर जंगमोंमें व विकाररूप धनुष शाखा दन्त (दांत) शृंग (सींग) आदिकोंमें सूत्र, चर्म (चमडा) व वस्त्रोंमें व भग्न (भंगहुये) के फिर अच्छे पूर्णरूपहुओंमें उसका (स्थिति-

स्थापकका) कार्य देखाजाता है इसका नित्य व अनित्य होना गुरुत्वके समान समझना चाहिये ॥ यह संस्कारका वर्णन समाप्त हुवा॥

इति संस्कारः ।

धर्म पुरुषका विशेष गुण है कर्ताके प्रिय हित व मोक्षका हेतु है । अतीन्द्रिय (इन्द्रियगोचर नहीं) है व अन्त्य सुख (नाशवान् विषयसुख) का बोध उसका विरोधी है वा वह अन्त्य सुखका विरोधी है । पुरुषके अन्तःकरणके संयोगसे व शुद्धके संयोग वा सत्संगसे उत्पन्न होता है । वर्ण आश्रमवालोंका जो जो जिसका नियत साधन है उसका निमित्त (कारण) है । श्रुति स्मृतिसे विहित सामान्य व विशेषभावसे नियम कियेगये वर्ण आश्रम-वालोंके द्रव्य गुण कर्म इसके साधन हैं । उनमें धर्ममें श्रद्धा अहिंसा भूतहित (सब प्राणियोंका हित) सत्यवचन अस्तेय (चोरी न करना) ब्रह्मचर्य, अनुपधा (वञ्चकतारहित होना) क्रोध-वर्जन, अभिषेचन, शुचि द्रव्यका सेवन, विशिष्ट देवता (ईश्वर) की भक्ति, उपवास (उपास), अप्रमाद (प्रमादका न होना) यह सामान्य हैं । ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्योंका पूज्य होना, अध्य-यन (विद्यापठन) व दान आदि यह ब्राह्मणके विशिष्ट साधन (धर्मके साधन) हैं । दानलेना, पढाना व याजन (पूजन कराना) ब्राह्मणवर्णके नियत संस्कार हैं, अच्छे प्रकारसे सब प्रजाओंका पालन करना, दुष्टोंको दण्ड देना, युद्धमेंसे मुख न फेरना क्षत्रियके निज संस्कार हैं । बेचना, मोल लेना, खेती करना, पशु-ओंको पालना यह वैश्यके निजसंस्कार हैं । मंत्ररहित क्रिया करना, पूर्व वर्णोंके अधीन रहना शूद्रके संस्कार हैं । अपने शास्त्रमें विहित गुरुकी सेवा करना, अग्नि (अग्निमें हवन करना), ईंधन (गुरुके लिये ईंधन लाना), भिक्षाचरण आदि करना व मधु (शराब), मांस, दिनका सोना, तेल लगाना त्याग करना यह चार आश्रमियोंमेंसे गुरुकुलके वास करनेवाले ब्रह्मचारीके साधन हैं

शालाके योग्य होना, अतिशय देशान्तरमें गमन करने आदि वृत्तिसे उपार्जित धनोंसे भूतयज्ञ, मनुष्ययज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ व ब्रह्मयज्ञ नामक इन पांच यज्ञोंका संध्या व प्रातःकाल अनुष्ठान करना यह विद्याव्रत[1] स्नातक स्त्रीको ग्रहण कियेहुए गृहस्थके धर्म साधनरूप कर्म हैं और एक अग्नि विधानसे पाकयज्ञसंस्थ[2] नित्ययज्ञोंका शक्ति विद्यमान होनेमें हविर्यज्ञसंस्थ अग्न्याधेय आदि यज्ञोंका व सोमयज्ञसंस्थ अग्निष्टोमआदि यज्ञोंका जो ब्रह्मचर्य अर्थात् इन यज्ञोंमें कर्तव्य ब्रह्मचर्य व अन्य यज्ञोंमें जो ब्रह्मचर्य है उसको करना व पुत्र उत्पन्न करना गृहस्थका धर्म है। ब्रह्मचारी अथवा गृहस्थका गांवसे वाहर निकलकर वनोंमें रहना व बकला, मृगछाला, केश (वाल), श्मश्रु (मूछ), नख, रोमोंको धारण करना, वनके जलका पीना, हवन कियेहुए व अतिथिके भोजन करनेपर जो बचै उसका भोजन करना यह वनस्थका (वानप्रस्थका) साधन वा कर्म है इन तीनों आश्रमियोंका अथवा इनमेंसे किसी एक श्रद्धावान्का सब भूतोंके लिये अभय देकर अर्थात् सबसे वैर छोड किसीको भय न देकर सब कर्मोंका संन्यास करके प्रमादरहित यम नियममें प्रवृत्त होना, छःपदार्थोंके तत्त्वज्ञानसे योगका साधन करना संन्यासआश्रमका साधन है । दृष्टप्रयोजन (प्रत्यक्षफल) न कहकर यह साधन कहे गये हैं । अर्थात् इन साधनोंका प्रयोजन स्वर्ग, मोक्षप्राप्तिफल अदृष्ट है भावकी प्रसन्नताकी अपेक्षायुक्त वा अपेक्षा

---

१ विद्याव्रतको जो समाप्त करता है व समाप्त करनेमें विद्याव्रत समाप्त होनेका स्नान करता है वह विद्याव्रत स्नातक है।

२ पाकयज्ञसंस्थ नित्य यज्ञ जो कहाहै इसका फलितार्थ यह है कि नित्ययज्ञ पाक यज्ञमें होते हैं संस्थशब्दका अर्थ ठहरता वा रहता है यह है, पाकयज्ञमें ठहरते हैं अथवा पाकयज्ञ जिनकी संस्था (मर्य्यादा) है उससे अधिक व भिन्नमें नहीं होते ऐसे नित्ययज्ञोंका यह अर्थ है ऐसे ही औरमें समझना चाहिये।

रखनेवाले आत्मा व मन संयोगसे धर्मकी उत्पत्ति होती है अथवा भावकी वा चित्तकी प्रसन्नतापूर्वक आत्मा व मनके संयोगसे धर्मकी उत्पत्ति होती है ॥

इति धर्मः ।

अधर्मभी आत्माका गुण है कर्ताके अहित प्रत्यवाय (प्रायश्चित्त-का हेतु है व अतीन्द्रिय है) अन्त्य दुःखका(अन्तमें होनेवाले दुःखका) सम्यग्ज्ञान उसका विरोधी है । शास्त्रमें प्रतिषेध किये गये धर्मसाध-नके विपरीत हिंसा, झूंठ बोलना, चोरीकरना आदि व विहित कर्मोंका न करना व प्रमाद (अवश्य कर्तव्य कर्मका न करना व जैसा चाहिये वैसा न करना) यह उसके (अधर्मके) साधन हैं। दुष्टोंकी संगति वा मेलकी अपेक्षा करके आत्मा व मनके संयोगसे अध-र्मकी उत्पत्ति होती है । राग द्वेष युक्त जो अविद्वान् (आत्मज्ञान रहित) है उसका कुछ अधर्मसहित धर्म आचरण प्रकृष्ट (अधिक वा उत्कृष्ट) होनेसे ब्रह्म, इन्द्रिय, प्रजापति, पितृ, मनुष्यलोकोंमें कर्म आशयके अनुसार हुये इष्ट शरीर विषय इन्द्रियसुख आदिके साथ योग होता है अर्थात् उसको इष्ट शरीर (इच्छाके विषय उत्तम शरीर) आदि प्राप्त होते हैं तथा कुछ धर्मसहित अधर्मके प्रकृष्ट होनेसे प्रेत, तिर्यक् योनिके स्थानोंमें अनिष्ट (निकृष्ट इच्छा विरुद्ध) शरीर, इन्द्रिय व दुःख आदिके साथ योग होता है अर्थात् अनिष्ट शरीर आदि प्राप्त होते हैं इस प्रकारसे प्रवृत्तिके कारण धर्म व अधर्म-सहित होनेसे देवता, मनुष्य, तिर्य्यक् योनि व नरकोंमें बारम्बार संसारका प्रबन्ध होता है । फलप्राप्त होनेका संकल्परहित ज्ञान-पूर्वक कियेहुये कर्मसे जो शुद्ध कुलमें उत्पन्न होता है व दुःखसे छूटनेके उपायके लिये जिज्ञासु हो आचार्य्यको प्राप्त हो षट् पदार्थका तत्त्वज्ञान लाभ करता है व तत्त्वज्ञान उत्पन्न होनेसे अज्ञानकी निवृत्ति होनेपर उसको विराग होता है (विरागयुक्त) होनेसे उसके राग व द्वेषसे अभावसे धर्म अधर्मकी उत्पत्ति न होनेमें व

सञ्चित धर्म व अधर्मके निरोध होनेमें(रुकजाने वा शान्त होजानेमें) संतोष सुख व शरीरका परिखेद हृदयमें उत्पन्न करके रागआदि निवृत्त होनेपर निवृत्तलक्षण (निवृत्तस्वरूप) केवल धर्म परमात्मज्ञानसे उत्पन्न सुखको प्राप्त करके वर्तमान होता है तब निर्बीज आत्माके शरीरआदिकी निवृत्ति होने व फिर शरीरआदिकी उत्पत्ति न होनेमें जिसका ईंधन जल गया है ऐसे अग्निके शान्त होनेके समान शांतिरूप (संसारप्रबन्ध शान्त होनारूप) मोक्ष प्राप्त होता है ॥

इत्यधर्मः ।

शब्द आकाशका गुण है श्रोत्रग्राह्य है (कर्णसे ग्रहण किया जाता है) क्षणिक है कार्य व कारण दोनों उसके विरोधी हैं अर्थात् कार्यरूप उत्तरशब्दसे पूर्व शब्द नष्ट होता है व कारणसंयोग व विभागसे नष्ट होता है इससे दोनोंसे नाशको प्राप्त होनेसे दोनों उसके विरोधी हैं व शब्द दोनोंसे विरोधको प्राप्त होता है संयोग विभाग व शब्दसे उत्पन्न होता है व एक देशमें होता है। समान व असमानजातीयकारणक (कारणवाला) है अर्थात् उक्त समान व असमानजातीय कारणसे उत्पन्न होताहै और दो प्रकारका होता है वर्णलक्षण (वर्णात्मक) व अवर्णलक्षण (अवर्णात्मक) अकार आदि वर्ण लक्षण है शंख आदिसे जो होताहै वह अवर्ण लक्षण है। वर्णलक्षणकी उत्पत्ति इस प्रकारसे होती है कि प्रथम स्मृतिकी अपेक्षा रखता वा स्मृतिकी अपेक्षायुक्त आत्मा व मनके संयोगसे वर्णके उच्चारणकी इच्छा होती है उसके पश्चात् प्रयत्न होता है उसकी अपेक्षा करता वा अपेक्षायुक्त आत्मा व वायुके संयोगसे वायुमें कर्म उत्पन्न होता है वह वायु ऊपरको जाताहुआ कण्ठ आदिकोंको घात करता है अर्थात् कण्ठआदिमें धक्का वा ठोकर लगाता है उससे स्थानवायुके संयोगकी अपेक्षायुक्त (स्थानवायुके संयोगलक्षणपूर्वक) स्थान व आकाशके संयोगसे वर्णकी उत्पत्ति होती है और भेरी व दण्डके संयोगसे वेगकी अपेक्षायुक्त भेरी व आकाशके

संयोगसे अवर्णलक्षण शब्द उत्पन्न होता है । व वेणु (बांस) की गांठके विभागकी अपेक्षायुक्त (विभागपूर्वक) वेणु व आकाशके विभागसेभी शब्द उत्पन्न होता है । शब्दसे शब्दकी सिद्धि वा उत्पत्ति होती है । संयोग व विभागसे सिद्धहुये शब्दसे शब्दहोना वीचियोंके सन्तानके समान (एक दूसरेके पीछे लहरोंकी पंक्तियोंके होनेके समान) शब्दका सन्तान होताहै । इस प्रकारसे सन्तानसे श्रोत्रदेश (कर्ण) में प्राप्त हुये अन्तः शब्दका (अन्तमें हुये शब्दतकका) ग्रहण होता है श्रोत्र व शब्द दोनोंके संयोग प्राप्त होनेके अभावसे न प्राप्त हुयेका प्रत्यक्ष न होनेसे शेष रहेहुये शब्दोंसे सन्तानकी सिद्धि होती है ।

इति गुणपदार्थस्समाप्तः ।

पांचों उत्क्षेपण आदिका कर्मके साथ सम्बन्ध है । एकद्रव्यवृत्तित्व (एकद्रव्यमें रहना), क्षणिक होना, मूर्त्तद्रव्यमें रहना, गुणरहित होना, गुरुत्व, द्रवत्व, प्रयत्न व संयोगसे उत्पन्न होना, अपने कार्य व संयोग विरोधियोंसे नाशको प्राप्तहोना, संयोग व विभागका साधारणही कारण होना, असमवायिकारण होना । अपने व पर आश्रयमें समवेत कार्य्यका आरंभक (उत्पन्न करनेवाला) होना समान व असमानजातीयका आरंभक होना, प्रत्येक नियत जातिके साथ संयोगी होना, दिशाविशिष्ट कार्यका आरंभक होना विशेष है (उत्क्षेपण आदि कर्मोंका विशेष है) इनमेंसे प्रत्येकका पृथक् २ विवरण यह है । शरीरके अवयवोंमें और जिनका उनके साथ संबंध है उनमें जो ऊर्ध्व भागवाले प्रदेशोंके साथ संयोग होनेका कारण व अधोभागवाले (नीचेवाले) प्रदेशोंसे विभाग होनेका कारणरूप गुरुत्व प्रयत्न व सयोगोंसे कर्म उत्पन्न होता है उसको उत्क्षेपण कहते हैं । इसके विपरीत जो संयोग व विभागका कारण कर्म होता है वह अवक्षेपण कहा जाता है जिस कर्मसे सीधे द्रव्यके आगेके अवयवोंका जहाँ वह होते हैं उन देशोंसे विभाग होता है

व मूलप्रदेशोंसे वा मूलप्रदेशोंके साथ सयोग होता है व अवयवी टेढा होजाता है वह आकुञ्चन है। इसके विरुद्ध संयोग व विभाग उत्पन्न होनेमें जिस कर्मसे अवयवी टेढेसे सीधा होता है वह सम्प्रसारण है। जो कर्म अनियत दिशा व देशके विभागका कारण होता है वह गमन है। यह पांचों प्रकारका कर्म शरीरके अवयवोंमें व उनके साथ जो सम्बद्ध हैं (सम्बंधयुक्त हैं) उनमें सम्प्रत्यय व असम्प्रत्यय होता है (एक दूसरेमें मेल होने व न होनेका ज्ञान होता है) जो इनसे अन्य है वह अप्रत्ययही है अर्थात् उसका होना कहीं विदित नहीं होता वह इनमें व औरोंमें गमन ही होना ज्ञात होता है। अब यह शंका होती है कि सब कर्मोंका गमनके अन्तर्गत होनेसे भेद न होनेसे कर्मोंकी पांच जाति होना मानना युक्त नहीं है। सब कर्म क्षणिक हैं चलनमात्र उत्पन्न आश्रयके (जिसमें चलन होता है उसके) ऊंचे नीचे तिरछा अथवा परमाणुओंके विवरमात्र देशोंसे संयोग व विभागोंको करता है ऐसा गमनप्रत्यय (चलनेका बोध) सर्वत्र एकही समान है तिससे सब गमन ही है वर्गशः (भिन्न भिन्न वर्ग वा जाति) नहीं है। प्रत्ययकी अनुवृत्ति (उसी प्रकारसे होना) व व्यावृत्ति (वैसा न होना) प्रत्यक्ष होनेसे यहाँ उत्क्षेपण है यहाँ अवक्षेपण है यह ज्ञात होता है यही सर्वत्र वर्गरूपसे प्रत्ययकी अनुवृत्ति व व्यावृत्ति ज्ञात होती है उनका हेतु (वर्ग होनेका हेतु) सामान्य व विशेषका भेद ज्ञात होता है व उत्क्षेपण आदिकोंका उत्आदि उपसर्गविशेषसे व प्रतिनियत दिशाविशिष्ट (विशेष दिशासम्बंधी) कार्यके आरंभसे (उत्पन्न करनेसे) उपलक्षणभेद सिद्ध होता है (शंका) ऐसा माननेपरभी निकलने व प्रवेश करने आदिमेंभी वर्गरूप प्रत्ययकी अनुवृत्ति ज्ञात होनेसे नहीं है (सामान्यविशेष भेदही है) ऐसा निश्चय नहीं होता अर्थात् यदि उत्क्षेपण आदिमें सर्वत्र वर्गरूप प्रत्ययकी अनुवृत्ति व व्यावृत्ति ज्ञात होनेसे जातिका भेद प्राप्त

होता है ऐसेही निष्क्रमण (निकलने) व प्रवेशन (प्रवेश करने) आदिमेंभी होगा जो यह कहा जाय कि कार्य्यभेदसे उनमें प्रत्ययकी अनुवृत्ति व व्यावृत्ति होतीहै तौ उत्क्षेपण आदिमेंभी कार्यभेदहीसे प्रत्ययकी अनुवृत्ति व व्यावृत्ति होनेका प्रसंग होगा, इसका उत्तर यह है कि वर्गरूपसे (समूहरूपसे) प्रत्ययकी अनुवृत्ति होनेका भेद समान होनेपरभी उत्क्षेपणआदिकोंका जातिभेद होता है निष्क्रमणआदिका नहीं होता । जो यह शंका हो कि कोई विशेष हेतु नहीं है तो जातिसंकर होनेके (जातिके मेल होनेका दोष होनेके) प्रसंगसे यह शंका युक्त नहीं है अर्थात् निष्क्रमणआदिकोंके जातिभेदसे प्रत्ययकी अनुवृत्ति व व्यावृत्तिमें जातिसंकर होनेका प्रसंग होताहै जैसे दो देखनेवालोंको एक वासगृहसे दूसरे वासगृहको जातेहुये (किसीको जातेहुये) देखनेमें निकसने व प्रवेश करनेके दोनों प्रत्यय एक साथ ज्ञात होते हैं तथा द्वारमें प्रवेश करनेमें प्रवेश करता है व निकसता है दोनों प्रकारसे विदित होता है और जब प्रतिसीरा आदि (कनातआदि) अपनीत होती है (दूर की जाती है वा कर दी जाती है) तब न निकसनेका प्रत्यय (ज्ञान) होता है और न प्रवेश करनेका प्रत्यय होता है केवल गमनका प्रत्यय होता है तथा जब नाडिका (नाडी) में बांसके पत्ता आदि गिरता है यह देखनेवालोंको एक साथ भ्रमण (घूमना) पतन (गिरना) व प्रवेशन (बैठना) के प्रत्यय ज्ञात होते हैं इस प्रकारसे जाति संकर होनेका प्रसंग होता है ऐसा उत्क्षेपणआदिमें प्रत्ययोंके संकर होनेका प्रसंग नहीं होता । तिससे उत्क्षेपण आदिकोंकी व्यावृत्ति जातिभेदसे होती है और निष्क्रमणआदिकी उनके कार्यभेदसे होती है । जो यह शंका हो कि एक साथ प्रत्ययोंका भेद कैसे होगा तो इसको मानलिया कि जैसे जातिसंकर नहीं हैं ऐसेही अनेक कर्मोंका समावेश (एकमें होना) नहीं है एकही कर्मके अनेक देखनेवालोंको एक साथ भ्रमण, पतन व प्रवेशनके प्रत्यय

कैसे होतेहैं अर्थात् नहीं होते तोभी अवयव व अवयवी दोनोंके दिशा व देशविशिष्ट संयोग व विभाग होनेके भेदसे एक समयमें भ्रमणआदिके प्रत्ययोंके होनेका प्रतिषेध (खण्डन) नहीं होता क्योंकि जो अवयवोंका देखनेवाला पार्श्वसे (बगल या पाससे) पर्य्यायसे (अनुक्रमसे अर्थात् बारबार उसी क्रमसे) दिशाओंके प्रदेशों-के साथ संयोग व विभागोंको देखता है उसको भ्रमण होनेका प्रत्यय होता है और जो अवयवके ऊंचे प्रदेशोंसे विभाग को व नीचे प्रदेशोंमें संयोग होनेको देखता है उसको पतन होनेका प्रत्यय होता है व जो नालिका (नाल) के अन्तर्देशमें (भीतरके देशमें) संयोग व बहिर्देशमें (बाहरके देशमें) विभागको देखता है उसको प्रवेश करनेका प्रत्यय होता है। इससे निष्क्रमण आदिकोंका प्रत्यय भेद कार्यभेदसे सिद्ध है उत्क्षेपणआदिका जातिभेदसे प्रत्यय भेद हो व निष्क्रमणआदिका कार्यभेदसे हो ऐसाही मानलिया अब अन्य संशय है वह यह है कि गमनत्व कर्मका पर्याय है (कर्मही अर्थका वाचक दूसरा शब्द है) अथवा अपरसामान्य है क्यों ऐसा संशय होता है संशयका हेतु यह है कि सब उत्क्षेपण आदिमें कर्म प्रत्ययके समान गमन प्रत्यय होनेसे उसमें कुछ विशेष न होनेसे कर्मत्वका पर्यायही गमनत्व है यह विदित होता है और जो यह कहाजाय कि उत्क्षेपणआदिके समान विशेषनाम कहा गया है तिससे अपरसामान्य मानना चाहिये तो उत्तर यह है कि कर्मत्व पर्याय होनेसे ऐसा मानना युक्त नहीं है अर्थात् जैसे आत्मत्व व पुरुषत्व यह पर्यायशब्द हैं (एकही अर्थवाचक हैं) ऐसेही कर्मत्व-पर्यायही गमनत्व है यदि ऐसा है तो विशेष संज्ञामें क्यों गमनको ग्रहण किया है अर्थात् विशेषनामसे क्यों कहा है भ्रमण आदिके अवरोध (रोक) के लिये विशेष संज्ञाका ग्रहण होनेसे यह शंका युक्त नहीं है अर्थात् उत्क्षेपण आदि शब्दोंसे भ्रमण, पतन, स्पन्दन (फिरना वा बहना) आदि जिनका अवरोध रोक नहीं होता उनके अव-

रोधके लिये गमनका ग्रहण किया है अन्यथा जो उत्क्षेपण आदि चार विशेषसंज्ञासे कहे गये हैं वही सामान्य व विशेषके विषय होंगे अथवा गमनत्व अपरसामान्यही हो तो अनियत (नियमरहित) दिशा देशके संयोग व विभाग कारणोंमें भ्रमण आदिहीमें वर्त्तमान होता है उत्क्षेपणआदिमें अपने आश्रयमें संयोग व विभाग कर्तृत्वके (कर्त्ताहोनेके) सामान्यसे गमनशब्द भाक्त (औपचारिक वा लाक्षणिक) समझना चाहिये । कर्महोने मात्रका प्रत्यय कर्मविधि है कैसे है उसका दृष्टांत यह है जैसे करनेकी इच्छा किये गये यज्ञ, अध्ययन (पठन), दान, कृषी आदिमें जब कोई हाथको उत्क्षेपण करने (ऊपर फेंकने) अर्थात् ऊपर ले जाने वा अवक्षेपणकरने (नीचे फेंकने) अर्थात् नीचे ले जाने वा करनेकी इच्छा करता है तब हाथवालेके आत्मप्रदेशमें (आत्माके अंशमें) प्रयत्न उत्पन्न होता है उस प्रयत्न व गुरुत्वकी अपेक्षा रखते वा करते अर्थात् अपेक्षासंयुक्त असमवायिकारण आत्मा व हाथके संयोगसे हाथमें कर्म होता है व हाथवालेके सब शरीरके अवयवों पादआदिकोंमें व शरीरमेंभी होता है उसके (शरीरके) साथ सम्बन्धोंमें (सम्बन्धयुक्त अवयवोंमें) भी कैसे होता है उसका विवरण यह है कि जब हांथसे मुशल (मूसर) को लेकर यह इच्छा करता है कि मैं हाथसे मुशलको ऊपरको फेकूं अर्थात् ऊपरको उठाऊं वा लेजाऊं उससे अनन्तर (उसके पश्चात्) प्रयत्न होता है उसकी अपेक्षायुक्त आत्मा व हाथके संयोगसे जिस कालमें हाथमें उत्क्षेपण कर्म उत्पन्न होता है उसी कालमें उस प्रयत्नकी अपेक्षा करताहुआ वा अपेक्षासंयुक्त हाथ व मुशलके संयोगसे मुशलमें भी कर्म होता है उसके पश्चात् दूर उत्क्षिप्त (उत्क्षेपण किये हुये) मुशलमें उत्क्षेपणकी इच्छा निवृत्त होती है अवक्षेपणकी इच्छा उत्पन्न होती है उसके पश्चात् प्रयत्न होताहै उसको अपेक्षा करते उस प्रयत्नसंयुक्त यथोक्त (जैसे कहे गये

वैसे) दो संयोगोंसे हाथ व मुशल दोनोंमें एक साथ अवक्षेपण कर्म होते हैं उससे अन्तमें हुये मुशलके कर्मसे उलूखल (उखली वा कांडी) व मुशल दोनोंका अभिघातनामक (जो अभिघात कहा जाता है वह) संयोग होता है और वह मुशलमें प्राप्त वेगको अपेक्ष्यमाण मुशलमें अप्रत्यय (जो प्रकट ज्ञात नहीं होता ऐसा) उत्पतन कर्मको (ऊपर उठनारूप कर्मको) करता है वह अभिघातकी अपेक्षायुक्त कर्म मुशलमें संस्कारको (वेगनाम संस्कारको) आरंभ करता है उस संस्कारसे युक्त हो मुशल व हाँथका संयोग हाथमें अप्रत्यय उत्पतन कर्मको करता है यद्यपि प्राक्तन (पूर्वका) संस्कार अभिघातसे नष्ट होजाता है तथापि मुशल व उलूखलका संयोग पटुकर्मका उत्पन्न करनेवाला संयोग विशेषके होनेसे उसके (वेगके संस्कारके) आरंभ करनेमें साचिव्यसे (सचिवभावसे) समर्थ होता है अथवा प्राक्तनही (पूर्वही) का पटु (तीव्र) संस्कार अभिघातसे नष्ट न होकर अवस्थित रहता है इससे संस्कारवान्में फिर संस्कार नहीं है इससे जिसही कालमें संस्कारकी जो अपेक्षा करता है ऐसे संस्कारयुक्त अभिघातसे मुशलमें अप्रत्यय (जो प्रत्यक्ष ज्ञात नहीं होता ऐसा) उत्पतन कर्म होता है उसी कालमें उसी संस्कारको अपेक्ष्यमाण (संस्कारकी जो अपेक्षा करता है ऐसे संस्कारको प्राप्त) मुशल व हाथके संयोगसे हाथमेंभी अप्रत्यय उत्पतन कर्म होता है। पाणिमुक्तोंमें (हाथसे छुटेहुयोंमें) गमनकी विधि है कैसे है इसका निदर्शन यह है जैसे जब तोमर लेकर हाथमें फैंकनेकी इच्छा उत्पन्न होती है उसके पश्चात् प्रयत्न होता है उस प्रयत्नकी जो अपेक्षा करते हैं ऐसे यथोक्त (जैसे कहे गये हैं) दोनों संयोगोंसे तोमर व हाथ दोनोंमें एकसाथ आकर्षण कर्म होते हैं। हाथ फैलानेपर तोमरके आकर्षणके अर्थ जो प्रयत्न होता है वह निवृत्त होजाता है उसके पश्चात् तिरछा, ऊँचे, दूर अथवा निकट

फेकूं ऐसी इच्छा उत्पन्न होती है उससे अनन्तर (उसके पश्चात्) उसके अनुरूप (अनुसार वा अनुकूल) प्रयत्न होता है उसके होने-पर उसकी जो अपेक्षा करता है ऐसा नोदन (प्रेरण) नामक तोमर व हाथका संयोग होता है । उस यथोक्त (जैसा कहागया है वैसे) नोदननामक संयोगसे नोदनकी जो अपेक्षा करता है ऐसा कर्म तोमरमें उत्पन्न होता है व उसी कालमें संस्कारको आरंभ करता है उससे उसके पश्चात् संस्कार व नोदन दोनोंसे जबतक हाथ व तोमरका विभाग होता है तबतक कर्म होते हैं उसके पश्चात् विभा-गसे नोदन निवृत्त होनेमें संस्कारसे ऊंचे तिरछे वा निकट प्रयत्नके अनुरूप अर्थात् जैसा प्रयत्न होता है उसके अनुसार गिरनेतक कर्म होते हैं । तथा छोडेगये यंत्रोंमें गमन विधि है कैसे है, इसका निदर्शन यह है यथा परिश्रम कियाहुवा बलवान् बायें हाथसे धनुषको थाँभकर वा संभालकर दहिने हाथसे बाणको संधानकर बाणसंयुक्त ज्याको (रोदाको) ग्रहण करके ज्या बाणसाहितमें इस धनुषको खींचूं ऐसी इच्छा करता है उसके पश्चात् प्रयत्न होता है उस प्रयत्नकी अपेक्षा करता आत्मा व हाथके संयोगसे जब हाथमें आकर्षण कर्म उत्पन्न होता है तभी उसी प्रयत्नकी जो अपेक्षा करता है ऐसे हाथ, ज्या व बाणोंके संयोगसे ज्यामें (रोदामें) व बाणमें प्रयत्नविशिष्ट कर्म होता है हाथ, ज्या व बाणके संयोगकी जो अपेक्षा करते हैं ऐसे अपेक्ष्यमाण (अपेक्षा करते) धनुषकी ज्या व कोटि (बाणका अग्रभाग) दोनोंके संयोगोंसे धनुष व कोटि दोनोंमें कर्म होते हैं यह सब एक साथ होते हैं । ऐसेही कानतक खींचेहुये धनुषमें अब इससे आगे नहीं जाना चाहिये ऐसा जो ज्ञान होता है उसके होनेसे आक-र्षणके लिये जो प्रयत्न होता है उसका नाश होता है उसके पश्चात् छोडनेकी इच्छा होती है उसके पश्चात् प्रयत्न होता है उसके होनेमें

उस प्रयत्नकी जो अपेक्षा करता है ऐसे आत्मा व अंगुलियोंके संयोगसे अंगुलियोंमें कर्म होता है तिससे ज्या व अंगुलियों व बाणका विभाग होता है उस विभागसे संयोगका नाश होता है उसके नष्ट होनेमें प्रतिवन्धक (रोकनेवाला) न होनेसे जब धनुषमें वर्तमान स्थितिस्थापक संस्कार यथावस्थित मण्डलीभूत (मण्डलरूप हुये) धनुषको स्थापन करता है तव जो उसी संस्कारकी अपेक्षा करता है ऐसे ज्या व धनुषके संयोगसे ज्यामें कर्म उत्पन्न होता है जो अपने करणकी अपेक्षा करताहै ऐसा वह कर्म संस्कारको करता है उसकी (संस्कारकी) जो अपेक्षा करता है ऐसा संस्कारको प्राप्त नोदनरूप (प्रेरणरूप) बाण व ज्याका संयोग होता है उससे नोदनकी जो अपेक्षा करता है वा रखता है ऐसा बाणमें हुवा आद्य कर्म (आदिमें हुवा कर्म) बाणमें संस्कारको आरंभ करता है । उस संस्कारसे नोदनके सहायसे जबतक बाण व ज्याका विभाग होता है तबतक कर्म होता है (होतेजाते हैं) । उसके पश्चात् विभागसे नोदन निवृत्त होनेमें संस्कारसे पतन होनेतक उत्तर उत्तर (एकके पीछे एक) कर्म होते हैं। बहुत संयोगोंके होनेसे क्रमसे बहुत कर्म होते हैं परन्तु मध्यमें कर्मसे अपेक्षा (आकांक्षा) के योग्य जो कारण है उसके अभावसे अर्थात् जिस कारणके होनेकी आवश्यकता है उसके न होनेसे संस्कार एकही रहता है अन्य नहीं होता। ऐसेही जिन द्रव्योंमें आत्मा अधिष्ठित है (ठहरा है) अर्थात् जिनमें आत्मा है उनमें सत्प्रत्यय (जिनके उत्तम होनेका ज्ञान होता है अर्थात् जो उत्तम ज्ञात होते हैं) व असत्प्रत्यय (जो उत्तम ज्ञात नहीं होते) कर्म उक्त (कहेगये) समझना चाहिये व जिनमें आत्मा अधिष्ठित नहीं है आत्मारहित जड हैं उन बाह्य चार महाभूतोंमें नोदनआदिकोंसे अप्रत्यय (जिसका बाह्य इन्द्रियसे प्रत्यक्ष नहीं होता) ऐसा केवल गमनही होता है। उनमें जो समस्त क

व्यस्तरूप गुरुत्व, द्रवत्व, वेग व प्रयत्नोंकी अपेक्षा करता है ऐसा संयोगविशेष नोदन है। अविभागकृत (विभागसे न हुये) कर्मका नोदन कारण है। उससे (नोदनसे) चारों महाभूतोंमें कर्म होता है यथा जिसको पंक (कीचड) कहते हैं उस पृथिवीमें जो वेगकी अपेक्षा करता है ऐसा जो (वेगसंयुक्त वा वेगपूर्वक) संयोग होता है व वह उस एक कर्मका जो विभागका हेतु होता है उसका कारण होताहै उसको अभिघात कहते हैं उससेभी महाभूतोंमें कर्म होता है यथा पाषाणआदिकोंमें पदआदिसे प्रेरणा कीगयी वा घात कीगयी जो पंकाख्या पृथिवी है (जिसको पंक कहते हैं वह पृथिवी है) उसमें अर्थात् पंकरूप पृथिवीमें जो संयोग होता है व नोदन (प्रेरण) व अभिघात दोनोंमेंसे एककी जो अपेक्षा करता वा रखता है अथवा दोनोंकी अपेक्षा रखता है ऐसा संयुक्तसंयोग जो होता है उससे भी जो प्रदेशप्रेरित नहीं किये जाते और न घातको प्राप्त किये जाते हैं उनमेंभी कर्म उत्पन्न होता है। पृथिवी व जलके गुरुत्व (गरुवाई) के धारण करनेवाले संयोग, प्रयत्न व वेगके अभाव होनेमें गुरुत्वसे जो अधोगमन (नीचेका जाना) है वह पतन (गिरना) है अर्थात् उसको पतन कहते हैं जैसे मुशल व करीर (करीर वृक्षके फल) आदिमें कहा गया है। तिनमें आद्य कर्म गुरुत्वसे होता है व द्वितीय(दूसरे) आदि गुरुत्व व संस्कारसे होते हैं। स्रोतरूप जलोंका स्थलसे जो नीचे चलना है वह द्रवत्वसे (द्रव होनेसे) बहना है। इसका निदर्शन यह है जैसे सब तरफसे रोकनेके संयोगसे अवयवी (जल अवयवी) का द्रवत्व बांधागया तो उसीके साथ एक अर्थमें समवेत अवयवोंका द्रवत्व भी बँधजाता है और उत्तरोत्तर (एक एकके पश्चात्) संयुक्त संयोगसे अवयवोंके द्रवत्व प्रतिबद्ध (बँधेहुये)

होते हैं जब एक मात्रासे सेतु भंग किया जाता है तब सब तरफसे प्रतिबद्ध (बँधे हुये) अवयवी द्रवत्वका कार्य आरंभ नहीं है । प्रतिबन्धक न होनेसे सेतुके समीपमें जो अवयव है उसके द्रवत्वके उत्तर उत्तरवाले अवयवोंके द्रवत्वोंकी वृत्ति प्राप्त होती है अर्थात् समीपस्थ अवयवके द्रवत्वके पश्चात् प्रतिबन्धक न होनेसे उसके उत्तर उत्तरवाले अवयवोंके द्रवत्वोंकी वृत्ति होती है (द्रवत्वप्रवृत्त होते हैं) उसके पश्चात् क्रमसे संयुक्तोंकाही संचलन (सामिटकर चलना) होताहै उससे पूर्व द्रव्यके नाश होनेमें प्रबन्धसे अवस्थित अवयवोंसे दीर्घ द्रव्य उत्पन्न होता है वा दीर्घद्रव्यकी उत्पत्ति होती है । उसमें कारणगुणपूर्वक क्रमसे द्रवत्व उत्पन्न होता है और उसमें संयुक्त कारणोंके प्रबन्धसे गमन होनेसे जो अवयवीमें कर्म उत्पन्न होता है उसको स्पन्दन (बहना) कहते हैं (संस्कारसे कर्म होना बाण आदिमें कहा गया है) तथा चक्र (चाक वा पहिया) आदिकोंमें अवयवोंके पार्श्व (बगल) से नियतदिशा व देशोंमें संयोग व विभाग उत्पन्न होनेमें जो अवयवीमें संस्कारसे अनियत दिशा व देशोंके संयोग व विभागका निमित्त (कारणरूप) कर्म होताहै वह भ्रमण (घूमना) है ऐसेही इन्हें आदि सब गमनके विशेष हैं । इच्छा, द्वेष, प्रयत्नकी जो अपेक्षा रखता है वा करता है उस आत्मा व वायुके संयोगसे इच्छाके अनुविधानसे (इच्छाअनुसार) जागनेवालेके व जीवनपूर्वक प्रयत्नकी जो अपेक्षा करता है उससे सुषुप्तके प्राण नामक वायुमें कर्म होता है । आकाश, काल, दिशा व आत्मा द्रव्य होनेपरभी सामान्यआदिके समान अमूर्त होनेसे क्रियारहित हैं । जो द्रव्य सर्वगत नहीं है अर्थात् एकदेशीय है उसका परिमाण मूर्त्ति है और उसीके साथ क्रिया होती है वह मूर्त्ति आकाश आदिमें नहीं है तिससे आकाशआदिमें क्रियाका सम्बंध नहीं है । अन्य इन्द्रियसे (अन्य अन्य इन्द्रियसे) विषयकी (विषयोंकी) प्रत्य-

क्षता देखने वा जाननेसे यह ज्ञात होता है कि इच्छा द्वेषपूर्वक प्रयत्नसे आत्मा व मनके संयोगसे अभिप्रायके अनुसार (आत्माके अभिप्रायके अनुसार) जागनेवालेके विग्रहसंयुक्त मनमें अन्य इन्द्रियके सम्बंधके अर्थ (निमित्त) कर्म होता है. जीवनपूर्वक प्रयत्नकी अपेक्षा रखते आत्मा व मनके संयोगसे सोयेहुयेके मनमें जागनेके कालमें कर्म होता है। जो अदृष्टकी अपेक्षा रखता है ऐसे अदृष्टपूर्वक आत्मा व मनके संयोगसे अपसर्पण व उपसर्पण (मरण व जन्मरूप) कर्म होता है। कैसे होता है उसका निदर्शन यह है यथा जब जीवन सहकारी (सहायक) धर्म व अधर्मोंके व उनके पूर्व प्रयत्नके विकल (सर्वथारहित) होनेसे प्राणवायुके निरोध होनेमें अन्य लब्धवृत्ति (वृत्तिको प्राप्त) आत्मा व मनके संयोगसचिव (सहायक वा अनुकूल) से हुये धर्म व अधर्मोंसे मृतकशरीरसे विभाग करनेवाला अपसर्पण (शरीरके त्यागमें जीवका निकलना) कर्म उत्पन्न होताहै तिससे (उसके पश्चात) शरीरसे बाहर जाना कर्म होताहै । उन्हीं दोनों धर्म व अधर्मसे उत्पन्न आतिवाहिक शरीर (सूक्ष्म लिङ्गशरीर) के साथ सम्बंधको प्राप्त होताहै उससे संक्रान्त (खिंचा वा लेजाया गया आत्मा) स्वर्ग वा नरकको जाकर आशयके अनुसार शरीरके साथ सम्बंधको प्राप्त होता है अर्थात् कर्म आशयके अनुसार शरीरको धारण करता है। उस शरीरके संयोगके लिये जो कर्म होता है उसको उपसर्पण कहते हैं। योगियोंके बाहर निकाले (निकासे) हुये मनका जहाँकी इच्छाकी उस देशमें जाना व फिर आना और सृष्टिकी उत्पत्तिमें नये शरीरके लिये कर्म करना अदृष्ट कारणसे होता है। और जो महाभूतोंमें प्रत्यक्ष व अनुमानसे उपकार व अपकार करनेमें समर्थ कारण ज्ञात होता है वह भी अदृष्टकारणसे होता है। तथा सृष्टिकी आदिमें परमाणुओंमें कर्म होना अग्निका

ऊर्ध्व गमन वायुका तिर्य्यग्गमन (तिरछा चलना) महाभूतोंका (वायु आदिका) प्रक्षोभ होना अभिषेक किये हुये मणियोंका चोरके पास जाना लोहेका अयस्कान्त (चुम्बक) के पास चलना वा सरकनाभी अदृष्टकारित है अर्थात् अदृष्टकारणसे होता है यहां कर्मपदार्थ समाप्त हुआ ।

इति कर्मपदार्थः ।

सामान्य पर व अपर भेदसे दो प्रकारका होता है । अपने विषयमें सबमें प्राप्त अभेदस्वरूप (भेदरहित) अनेक वृत्ति (अनेकमें जिसकी प्रवृत्ति होती है अर्थात् अनेकमें होनेवाला) एक दो व बहुतोंमें जो अपने स्वरूपकी अनुवृत्ति (समान होनेके ज्ञान) का कारण होता है वह सामान्य है जैसे प्रत्येक पिण्डमें होनेवाला सामान्यापेक्ष ज्ञानकी (जो सामान्यकी अपेक्षा करता है उस ज्ञानकी) उत्पत्तिमें अभ्यासप्रत्यय (अभ्याससे हुये ज्ञान) से उत्पन्न हुये संस्कारसे अतीत ज्ञानप्रबंध (भूतकालमें हुये ज्ञानके प्रबन्ध) के प्रत्ययके अवेक्षणसे (देखने वा विचारनेसे) जो समनुगत (पूर्वके समान प्राप्त) है वह सामान्य है । तिसमें केवल अनुवृत्ति प्रत्ययका कारण सत्ता परसामान्य है । जैसे परस्पर विशिष्ट चर्म वस्त्र कमल आदिकोंमें अन्यसे नीलीद्रव्य सम्बंधसे पूर्वमें प्रत्यक्षहुये नीलके स्मरणसे नीलमें नील है ऐसा पूर्व समान प्रत्यय ज्ञान होना प्रत्ययानुवृत्ति है अर्थात् ऐसे प्रत्यय होनेको प्रत्ययानुवृत्ति कहते हैं तैसेही परस्पर विशिष्ट द्रव्य, गुण, कर्मोंमें विशेषतारहित सबमें होनेका ज्ञान यह है कि, यह प्रत्ययानुवृत्ति है सो वह अर्थान्तर होनेसे हो सक्ती है जो उनसे अर्थान्तर (भिन्न अर्थ) है वह सत्ता है यह सिद्ध है वा सिद्ध होता है यह सबमें प्रत्ययानुवृत्तिही है तिससे सत्ता सामान्यही है और द्रव्यत्व, गुणत्व व कर्मत्व आदि अपर हैं क्योंकि अनुवृत्तिप्रत्यय (समानवृत्तिका ज्ञान)

व व्यावृत्तिप्रत्यय (भेद होनेका ज्ञान) के हेतु होनेसे सामान्य होते हैं व विशेषभी होते हैं । उनमेंसे द्रव्यत्व परस्पर (एक दूसरेसे): विशिष्ट पृथिवीआदिद्रव्योंमें अनुवृत्तिप्रत्ययका हेतु होनेसे सामान्य है व गुण कर्मोंसे व्यावृत्ति प्रत्ययका हेतु होनेसे विशेष है तैसेही गुणत्व परस्पर विशिष्टरूप आदिमें अनुवृत्तिप्रत्ययका हेतु होनेसे सामान्य है द्रव्य कर्मोंसे व्यावृत्तिप्रत्ययका हेतु होनेसे विशेष है तैसेही कर्मत्व परस्परविशिष्ट उत्क्षेपणआदिमें अनुवृत्तिका हेतु होनेसे सामान्य है द्रव्य गुणोंसे व्यावृत्तिप्रत्ययका हेतु होनेसे विशेष है। ऐसेही प्राणी व अप्राणियोंमें प्राप्त पृथिवीत्व, रूपत्व उत्क्षेपणत्व गोत्व व पटत्व आदिकोंका अनुवृत्ति व व्यावृत्तिप्रत्ययोंके हेतु होनेसे सामान्य व विशेष होना सिद्ध होता है। यह द्रव्यत्व आदि प्रभूत विषय होनेसे प्रधानभावसे सामान्य है और अपने आश्रयके विशेषक (विशेष करनेवाले) होनेसे भेद भावसे विशेष कहे जाते हैं लक्षण भेद होनेसे इनका (द्रव्यत्वआदि सामान्योंका) द्रव्य गुण कर्मोंसे अर्थान्तर (अन्य पदार्थ होना) सिद्ध होता है इसीसे नित्यत्वभी है। द्रव्यआदिमें अनुवृत्तिके नियमसे व प्रत्ययके भेदसे परस्परसे भिन्नता है। प्रत्येकमें अपने आश्रयोंमें लक्षण विशेषसे और विशेष लक्षणके अभावसे एकत्व है यद्यपि सामान्य अपरिच्छिन्न देश है अर्थात् कोई देशका नियम उसमें नहीं है तथापि उपलक्षण नियमसे व कारणसामग्रीके नियमसे अपने विषयमें सर्वगत है अन्तरालमें (मध्यमें) संयोगसमवायवृत्तिके अभावसे व्यपदेश्य (कहने योग्य) नहीं है यह सामान्य पदार्थ समाप्त हुवा ॥

इति सामान्यपदार्थः ।

अन्त्यः (अन्तमें होनेवाले) अपने आश्रयविशेष होनेसे अथवा अपने आश्रयके विशेषके (व्यावर्तक) होनेसे विशेष हैं।

विनाश व आरंभरहित नित्य आकाश, काल, दिशा, आत्मा व मन द्रव्योंमें प्रत्येक द्रव्यमें एक एक करके वर्तमान अत्यन्त व्यावृत्त बुद्धिके हेतु होते हैं यथा हमलोगोंको अश्वआदिकोंसे गौआदिमें तुल्य, आकृति, गुण क्रिया, अवयव, संयोगानिमित्त युक्त वा निमित्त-पूर्वक प्रत्ययकी व्यावृत्ति (भेदबुद्धि) ज्ञात होती है जैसे गौ (बैल) शुक्ल, शीघ्र चलनेवाला महाघण्टावाला ककुद्मान् (डिला वा काँ-धोरवाला) ऐसा विशेष द्रव्योंका ज्ञान होता है तथा हमसे विशिष्ट योगियोंको तुल्य आकृति, गण व क्रियावाले नित्य परमाणुओंमें मुक्त आत्मा व मनोंमें अन्य निमित्त संभव होनेसे जिन निमि-त्तोंसे प्रत्याधारमें (प्रत्येक आधार द्रव्यमें) यह इससे विलक्षण है यह प्रत्ययकी व्यावृत्ति होती है । और देशकालविशिष्ट परमाणु-ओंमें यह वही है ऐसा प्रत्यभिज्ञान (पहिचान) होता है वह अन्त्य विशेष है वा उनको अन्त्य विशेष कहते हैं । जो विना अन्त्य विशेषोंके (अन्त्य विशेष गुणोंके) योगियोंको योगसे उत्पन्न हुये धर्मसे प्रत्यय व्यावृत्ति व प्रत्यभिज्ञान होना मानै तौ क्या दोष होगा उत्तर ऐसा नहीं होता है यथा योगज (योगसे उत्पन्न) धर्मसे अशुक्लमें शुक्ल प्रत्यय उत्पन्न नहीं होता है । और अत्यन्त अदृष्टमें अर्थात् जो कहीं ज्ञात नहीं है उसमें प्रत्यभिज्ञान होगा तो मिथ्या प्रत्यय (मिथ्याज्ञान) होगा तैसेही इसमें भी विना अन्त्य विशे-षोंके योगियोंके योगज धर्मसे प्रत्ययव्यावृत्ति व प्रत्यभिज्ञान होनेमें मिथ्या प्रत्यय होना संभव है वा होसक्ता है जो यह प्रश्न हो कि अन्त्य विशेषोंके समान परमाणुओंमें स्वतः (आपसे) प्रत्ययव्यावृत्ति अथवा प्रत्यभिज्ञान कल्पना किया जाता है वा कल्पना करे तो क्या दोष है । उत्तर—नहीं, तादात्म्यसे (वहीरूप होनेसे) आपसे कल्पना नहीं की जाती, इसमें तादात्मकोंमें अनिमित्त (निमित्तरहित) प्रत्यय होताहै यथा घटआदिकोंमें

प्रदीप निमित्तसे प्रत्यय होताहै प्रदीपमें प्रदीपसे नहीं होता अर्थात् विना अन्यनिमित्त प्रदीपही (दीपही) से प्रदीपका प्रत्यय होताहै यथा श्वमांस (कुत्तेका मांस) आदि आपही अशुचि होतेहैं और उनके योगसे औरमें अशुचिता होतीहै तथा यहां भी तादात्म्यसे अन्त्य विशेषोंमें आपहीसे प्रत्ययव्यावृत्ति होतीहै उनके योगसे परमाणुआदिकोंमें होतीहै।

इति विशेषपदार्थः।

अयुतसिद्ध (जिनका सम्बन्ध मिलनेसे नहीं हुआ विना सम्बन्ध कभी विद्यमान नहीं हैं) आधारी आधाररूप पदार्थोंका जो सम्बन्ध इसमें यह है ऐसा प्रत्यय होनेका हेतु है वा होता है वह समवाय है अर्थात् उसको समवाय कहते हैं इसका विवरण यह है कि अयुतसिद्ध आधारीआधारभावसे अवस्थित जो द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य व विशेष हैं चाहे वह कार्यकारणभूत हों अथवा कार्यकारणभूत न हों अर्थात् उनमें परस्पर कार्यकारणसम्बन्ध हो अथवा न हो उनका इसमें यह है ऐसा प्रत्यय जिससे (जिस सम्बन्धसे) होता है और जिससे जो सर्वगत नहीं है अर्थात् व्यापक नहीं है जिनमें उनसे पृथक् अन्यका होना प्राप्तहै वा ज्ञात है उनके सब स्थानमें न होनेका वा उनका इसमें यह है ऐसा ज्ञान होताहै वह समवायसम्बन्ध कहा जाताहै उसका निदर्शन यह है यथा इस कुण्ड(कूँडे)में दही है ऐसा प्रत्यय सम्बन्ध होनेमें होता है वा ज्ञात होता है तथा तन्तुओंमें पट है इन वीरणोंमें (तृणविशेषोंमें) कट (चटाई) है इस द्रव्यमें द्रव्य, गुण, कर्म हैं इन द्रव्यगुण कर्मोंमें भी सत्ताभाव है इस द्रव्यमें द्रव्यत्व इस गुणमें गुणत्व इस कर्ममें कर्मत्व है इस नित्यमें अन्त्य विशेष (अन्तमें जो हो अर्थात् अन्तमें रहे गुणविशेष) है ऐसा ज्ञान होनेसे इनका परस्पर सम्बन्ध है

ऐसा विदित होता है। सम्बन्धियोंके अयुतसिद्ध होनेसे (मिलनेसे वा योग होनेसे सम्बन्धको प्राप्त हुये सिद्ध न होनेसे अर्थात् सदा सम्बन्धसहितही सिद्ध होनेसे) और केवल अधिकरण (आधार वा आश्रय) व अधिकर्तव्य (आधेय) हीमें होनेसे। अन्यतर कर्मज (दोमेंसे एकके कर्मसे उत्पन्न) आदि निमित्त न होनेसे अर्थात् संयोगके समान अन्यतर कर्मसे उत्पन्न होना आदि निमित्त न होनेसे व विभागसे अन्त होना प्रत्यक्ष न होने वा ज्ञात न होनेसे यह सम्बन्ध (समवायसम्बन्ध) संयोग नहीं है। और वह (समवाय) भावके समानलक्षण भेद होनेसे द्रव्यआदिकोंसे भिन्न पदार्थ है अर्थात् जैसे द्रव्यत्व, गुणत्व आदि रूपसे अपने आधारमें (अपने आधार द्रव्यमें) स्वात्मानुरूप (अपने आत्माके समानरूप) प्रत्ययका करनेवाला होनेसे अपने आश्रयसे व परस्परसे भावका अर्थान्तर (भिन्न पदार्थ) होना सिद्ध होता है तैसेही पांचों पदार्थोंमें इसमें यह है ऐसा ज्ञान होनेसे उनसे (पाँचों पदार्थोंसे) समवायकाभी भिन्न पदार्थ होना सिद्ध होता है और संयोगके समान समवायमें अनेकत्व नहीं है अर्थात् समवायसंयोगके समान अनेक नहीं है सामान्य लिंग (चिह्न) वाला होनेसे व उसका कोई विशेष लिंग (भेददर्शक लिंग) न होनेसे भावके समान है तिससे भावके समान सर्वत्र समवाय एक है जो यह शंका हो कि द्रव्य गुण कर्मोंका द्रव्यत्व, गुणत्व व कर्मत्व आदि विशेषणोंसे एकही भाव सम्बंध होनेसे (एकही भावके साथ सम्बंध होनेसे) पदार्थ संकर होनेका (एक पदार्थ दूसरेमें मिल जानेका) प्रसङ्ग होगा तो उत्तर यह है कि अपने आधार व आधेय नियम होनेसे ऐसा नहीं होगा वा नहीं हो सक्ता यद्यपि समवाय सर्वत्र (सबमें) स्वतंत्र एक है तथापि आधार व आधेय होनेका नियम है जैसे द्रव्यत्व द्रव्योंहीमें है गुणत्व गुणहीमें (गुणोंमात्रमें) है कर्मत्व

कर्महीमें (कर्मोंमात्रमें) है ऐसेही अन्यमें समझना चाहिये क्यों कि अन्वय (योग वा मेल) व व्यतिरेक (भेद) ज्ञान होनेसे ऐसा निश्चय होता है। इसमें यह ऐसा समवायके निमित्त (कारण) रूप ज्ञानको अन्वय (योग) प्रत्यक्ष करने वा जाननेसे समवाय सर्वत्र एकही है यह निश्चय होता है वा सिद्ध होता है । द्रव्यत्व-आदिके निमित्तरूप प्रत्ययोंका व्यतिरेक (भेद) ज्ञात होनेसे प्रत्येकमें नियमभी है यह विदित होता है यथा कुण्ड (कूँडा) व दधि दोनोंका संयोग एकही होनेपरभी आश्रयआश्रयी होनेका नियम है तथा द्रव्यत्व आदिकोंकाभी है द्रव्यत्व आदिमें समवाय एकही होनेपरभी व्यङ्ग्य व व्यञ्जक (प्रकाश करनेके योग्य प्रकाश करनेवाला) शक्तिभेदसे आधारआधेयभावका (आधार व आधेय होनेका) नियम है। भावके समान कारणरहित होनेसे सम्बंधके नित्य होनेपरभी संयोगके समान अनित्य नहीं है अर्थात् जैसे प्रमाणसे कोई कारण ज्ञात वा सिद्ध न होनेसे भाव नित्य है यह कहा है तैसे ही (भावके समान) समवाय भी है (समवायभी नित्य है) क्योंकि इसका भी कोई कारण प्रमाणसे प्राप्त वा सिद्ध नहीं होता । अब किस वृत्तिसे द्रव्य आदिकोंमें समवाय वर्तमान वा प्रवृत्त होता है यह सिद्ध न होनेसे समवायका होना सिद्ध नहीं होता क्योंकि गुण होनेसे संयोगद्रव्यमें आश्रित होता है संयोगके द्रव्यमें आश्रित होनेसे व उसके द्रव्यमें आश्रित न होनेसे संयोग नहीं है व उसके एक होनेसे समवायभी नहीं है और अन्य कोई वृत्ति नहीं है जिससे उसकी प्रवृत्ति मानी जाय (उत्तर) तादात्म्यसे (अपने स्वरूपहीसे सिद्ध होनेसे) यह शंका युक्त नहीं है जैसे द्रव्य, गुण, कर्मोंका सत्तारूप जो भाव है उसका अन्य सत्ताके साथ योग नहीं है ऐसेही भिन्न न होनेवाले वृत्त्यात्मक (वृत्तिस्वरूप) समवायकी अन्य वृत्ति नहीं है अर्थात् अन्य वृत्तिकी अपेक्षारहित अपनेही आत्मस्वरूपसे प्रवृत्त वा विद्यमान है इसीसे सत्ताआदिके

समान प्रत्यक्षोंमें उसकी वृत्ति न होनेसे व अपने आत्मामें प्राप्त ज्ञानसे उसका होना ज्ञात वा सिद्ध होनेसे अतीन्द्रिय है (इन्द्रियोंसे ग्राह्य नहीं है अर्थात् बाह्यइन्द्रियोंसे प्रत्यक्ष नहीं है) तिससे समवाय बुद्धिहीसे अनुमान करनेके योग्य है ।

इति समवायपदार्थः ।

इति श्रीमत्प्रशस्तपादाचार्यविरचितस्य पदार्थधर्मसंग्रहरूपवैशेषिक-
दर्शनभाष्यस्य श्रीमत्प्यारेलालात्मज-बाँदाँमण्डलान्तर्गततेरही-
त्याख्यग्रामवासिपण्डितप्रभुदयालनिर्मितो देशभाषानु-
वादस्समाप्तः ।

इति वैशेषिकदर्शनं समाप्तम् ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-
खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस-मुंबई.